मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 102 ● वर्ष 11, अंक 9 ● नवम्बर 2021 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

पेगासस : पूँजीवादी सत्ता के जनविरोधी निगरानी तंत्र का नया औज़ार 11

मौजूदा धनी किसान आन्दोलन का वर्ग चरित्र और उसकी हालिया अभिव्यक्तियाँ 7

चीन का एवरग्रान्दे संकट : पूँजीवाद के मुनाफ़े की गिरती दर के संकट की अभिव्यक्ति 13

महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की 104वीं वर्षगाँठ के अवसर पर

फिर लोहे के गीत हमें गाने होंगे
दुर्गम यात्राओं पर चलने के संकल्प जगाने होंगे

7 नवम्बर 2021 को रूस की महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति के 104 वर्ष पूरे हो गये। इस क्रान्ति के साथ मानव समाज के इतिहास का एक नया अध्याय शुरू हुआ था और बीसवीं सदी के इतिहास को यदि किसी घटना ने सबसे ज़्यादा परिभाषित किया था, तो वह यह क्रान्ति थी। यह कोई साहित्यिक दावा या मुहावरे के रूप में कही गयी बात नहीं है, बल्कि शब्दश: सच है। इस क्रान्ति ने मानव इतिहास में मज़दूर वर्ग की पहली व्यवस्थित राज्यसत्ता स्थापित की और समाजवाद के पहले महान प्रयोग की शुरुआत की। रूस के मज़दूर वर्ग ने ग़रीब और मँझोले मेहनतकश किसानों और मध्यवर्ग को साथ लेकर 7 नवम्बर 1917 को पूँजीपतियों और भूस्वामियों की तानाशाही की नुमाइन्दगी करने वाली आरज़ी सरकार को उखाड़ फेंका और सर्वहारा वर्ग की तानाशाही की स्थापना की। रूस के सर्वहारा वर्ग ने अपनी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी, यानी बोल्शेविक पार्टी, के नेतृत्व में इस महान उपलब्धि को अंजाम दिया। बोल्शेविक पार्टी उस समय दुनिया की सभी कम्युनिस्ट पार्टियों में विचारधारात्मक व राजनीतिक रूप से सबसे उन्नत पार्टी थी और इसमें व्लादिमिर इलिच लेनिन की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण थी। आज मज़दूर वर्ग के लिए यह जानना विशेष महत्व रखता है कि रूस के हमारे मज़दूर भाइयों-बहनों ने किस प्रकार पूँजीपति वर्ग की सत्ता को उखाड़ फेंका था और सर्वहारा सत्ता और समाजवादी व्यवस्था की स्थापना की थी।

सम्पादक मण्डल

महान समाजवादी अक्तूबर क्रान्ति ने क्या किया?

क्रान्ति के तुरन्त बाद रूस की समाजवादी मज़दूर सत्ता ने समस्त ज़मीन का राष्ट्रीकरण कर उसे समूची जनता की सम्पत्ति घोषित कर दिया, समस्त भूस्वामियों की ज़मीनें ज़ब्त कर ली गयीं, ग़रीब व मँझोले किसानों तथा खेतिहर मज़दूरों की व्यापक आबादी को ज़मीनों का, भोग करने के अधिकार के आधार पर और मज़दूरों के उजरती श्रम के शोषण पर रोक लगाने वाले क़ानून के साथ वितरण किया गया, सभी कारख़ानों का और खानों-खदानों का राष्ट्रीकरण कर दिया गया और उन्हें पार्टी के नेतृत्व में मज़दूर प्रबन्धन के अधीन रख दिया गया, सभी बैंकों का राष्ट्रीकरण कर दिया गया और विदेशी कम्पनियों की सारी परिसम्पत्ति ज़ब्त कर ली गयी। यानी कारख़ानों व खानों-खदानों व वित्त का पूर्ण राष्ट्रीकरण कर दिया गया और खेती के क्षेत्र में सर्वाधिक आमूलगामी जनवादी सुधार किया गया।

खेती के क्षेत्र में तुरन्त किसानों व खेतिहर मज़दूरों के सहकारी फ़ार्म, सामूहिक फ़ार्म व राजकीय फ़ार्म बनाकर समाजवादी सम्पत्ति सम्बन्ध स्थापित नहीं किये जा सके, जिसके दो कारण थे: पहला, रूसी क्रान्ति जब और जिन विशिष्ट परिस्थितियों में हुई, उस समय तक गाँवों में ग़रीब व मँझोले किसानों तथा खेतिहर मज़दूरों के बीच बोल्शेविक पार्टी का आधार बेहद सीमित था और वहाँ पर अन्य ताक़तों जैसे कि समाजवादी-क्रान्तिकारी पार्टी का आधार ज़्यादा था, जिन्होंने रूसी खेती में जारी पूँजीवादी विकास के बावजूद राजनीतिक तौर पर खेतिहर सर्वहारा व अर्द्धसर्वहारा तथा मेहनतकश किसानों के बीच एक बुर्जुआ जनवादी भूमि कार्यक्रम के लिए व्यापक व आम सहमति बना रखी थी; दूसरा, खेती में जारी पूँजीवादी विकास के बावजूद रूस की किसान आबादी में ज़मीन की भूख बनी हुई थी क्योंकि अभी सामन्ती भूस्वामियों का दमन-उत्पीड़न बहुत पुराने अतीत की बात नहीं थी और रूस के तमाम क्षेत्रों में वह अभी पूरी तरह

(पेज 8 पर जारी)

कोयले की कमी और बिजली संकट

साज़िश नहीं बल्कि पूँजीवाद में निहित अराजकता का नतीजा है

– आनन्द

अक्टूबर के दूसरे हफ़्ते से मीडिया में कोयले की कमी की वजह से बिजली के संकट की ख़बरें आना शुरू हो गयी थीं। उसके बाद दिल्ली, महाराष्ट्र, पंजाब और तमिलनाडु जैसे राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने बिजली के सम्भावित संकट पर सार्वजनिक बयान दिया। प्रधानमंत्री और गृहमंत्री को इस संकट से निपटने के लिए विशेष बैठकें बुलानी पड़ीं। उसके बाद कोल इण्डिया को निर्देश दिया गया कि अन्य क्षेत्रों को कोयले की आपूर्ति रोककर पूरे कोयले को बिजली उत्पादन में लगाया जाये। कोयला और बिजली के क्षेत्र से जुड़े तमाम विशेषज्ञ पहले से ही इस संकट के बारे में सरकार को आगाह कर रहे थे और इसके कारणों की चर्चा कर रहे थे। लेकिन सोशल मीडिया पर कुछ स्वयंभू विशेषज्ञ अपनी आदत के अनुसार हर मुद्दे की तरह इस संकट को भी चन्द इज़ारेदार कम्पनियों की साज़िश क़रार देते हुए इस संकट के अस्तित्व को ही नकारने में जुटे थे। इस प्रकार के षड्यंत्र-सिद्धान्तकार हर घटना को चन्द इज़ारेदार कम्पनियों की साज़िश क़रार देने की तुक्केबाज़ कोशिश के चक्कर में समूची पूँजीवादी व्यवस्था को उसके मानवता-विरोधी अपराधों से बरी कर देते हैं। ऐसे महानुभावों के दिमाग़ में इतनी सीधी बात नहीं आती कि समूचे पूँजीपति वर्ग के दूरगामी हितों की रक्षा करने में संलग्न पूँजीवादी राज्यसत्ता भला चन्द इज़ारेदार कम्पनियों के हितों को साधने के लिए समूचे पूँजीवादी उत्पादन को ठप करने जैसा आत्मघाती क़दम क्यों उठायेगी! सच तो यह है कि मौजूदा बिजली संकट पूँजीवादी उत्पादन-प्रणाली में निहित अराजकता का एक जीता-जागता उदाहरण है जो एक बार फिर साबित करता है कि आज के दौर में पूँजीवाद का अस्तित्व मानवता पर बोझ बन चुका है।

पूँजीवाद की संरचना में निहित योजनाविहीनता और अराजकता समय-समय पर क़िस्म-क़िस्म के संकटों को जन्म देती रहती है। कोरोना महामारी की वजह से दुनिया के तमाम देशों की अर्थव्यवस्थाएँ क़रीब डेढ़ साल ठप हो गयी थीं। जब इन अर्थव्यवस्थाओं के पटरी पर लौटने की शुरुआत हो ही रही थी कि माँग और आपूर्ति में असन्तुलन की वजह से कई देशों में ऊर्जा संकट की स्थिति पैदा हो गयी। माँग में आयी बढ़ोत्तरी की वजह से अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में तेल, गैस और कोयले के दामों में ज़बर्दस्त उछाल देखने में आया है। भारत की अर्थव्यस्था में भी कोरोना की दूसरी लहर के कमज़ोर होने के बाद उत्पादन बढ़ने की वजह से अगस्त-सितम्बर में बिजली की माँग में 2019 की तुलना में 17 फ़ीसदी की बढ़ोत्तरी हुई। चूँकि अभी भी देश में बिजली उत्पादन के 70 प्रतिशत के लिए कोयले पर निर्भरता है इसलिए अर्थव्यवस्था में बिजली की माँग के बढ़ने के साथ ही साथ कोयले की माँग में तेज़ी से बढ़ोत्तरी हुई। लेकिन आन्तरिक और बाह्य दोनों कारणों से कोयले की आपूर्ति माँग के मुताबिक़ नहीं बढ़ पायी जिसकी वजह से अक्टूबर के मध्य तक देश के 135 कोयला-आधारित बिजली उत्पादन संयंत्रों में 116 के पास 3 से 4

(पेज 12 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

एकजुट संघर्ष ही रास्ता है

मेरा नाम रौशन कुमार है। मैं एक बैंक में कार्यरत हूँ। मैं पिछले कई महीनों से मज़दूर बिगुल अख़बार पढ़ता आ रहा हूँ। हालाँकि अब तो मुझे बिगुल अख़बार का बड़ी ही बेसब्री के साथ इन्तज़ार रहता है। इसमें मौजूदा हालात और विभिन्न मसलों पर आने वाला दृष्टिकोण काफ़ी विचारोत्तेजक और आँखें खोलने वाला होता है। सच कहूँ तो मैं शहीद भगतसिंह का दीवाना था और इसी कारण से मैंने उनके विचारों के बारे में और फिर उनके सपने 'समाजवाद' के बारे में जानना-पढ़ना शुरू किया था। समाजवाद के बारे में सही जानकारी और अच्छी किताबों की खोजबीन की प्रक्रिया में ही मैं पहले 'जनचेतना' के वैकल्पिक मीडिया अभियान और फिर मज़दूर बिगुल अख़बार तक पहुँचा। इसी दौरान मेरा सम्पर्क बिगुल मज़दूर दस्ता के साथियों के साथ भी हुआ। वैसे तो मैं एक मध्यमवर्गीय परिवार से ताल्लुक़ रखता हूँ पर ख़ुशक़िस्मती कहिए या कुछ और मैं भारतीय मध्यमवर्ग के जैसा कूपमण्डूक क़त्तई नहीं बन पाया हूँ। मैं तहेदिल से प्रगतिशील विचारों और बेहतर सामाजिक बदलाव का हामी हूँ और इसके लिए जितना बन पड़ता है उतना प्रयास भी करता हूँ। मैं मज़दूर बिगुल अख़बार की राजनीतिक लाइन और इसमें पेश मज़दूर वर्गीय दृष्टिकोण का तहेदिल से समर्थन करता हूँ। अभी तक पढ़े गये इसके सभी अंकों से मैं प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका हूँ।

मज़दूर बिगुल मेहनतकश वर्गों के लिए वाक़ई में एक बेहद महत्त्वपूर्ण अख़बार है। हमारे देश में पूँजीवाद मज़दूरों-मेहनतकशों और ग़रीब जनता पर बुरी तरह से क़हर बरपा कर रहा है। धार्मिक कट्टरपन और फ़ासीवाद का दानव भी हमारे सामने अपने विकराल रूप में उपस्थित है। इन प्रतिगामी ताक़तों का एकजुटता और बहादुरी के साथ हमें सामना करना ही होगा। आज गोदी मीडिया के दौर में मज़दूर बिगुल जैसा अख़बार ही मेहनतकश जनता का अपना अख़बार हो सकता है। कॉर्पोरेट मीडिया के झूठ, इसके द्वारा फैलाये जा रहे अन्ध-राष्ट्रवाद और पूँजीवादी लूट का पर्दाफ़ाश किया जाना बेहद ज़रूरी है। साथ ही समाजवाद का प्रचार भी अत्यावश्यक है। अतीत के समाजवादी प्रयोगों या मेहनतकशों द्वारा क़ायम राज-व्यवस्थाओं की सच्चाई भी जनता को बहुत कम पता है। ज़्यादातर लोग तो बस पूँजीवादी प्रोपगैण्डा का ही शिकार हैं। समाजवाद-साम्यवाद की आवश्यकता का प्रचार-प्रसार भी हमारा ज़रूरी कार्यभार बनता है। मुझे लगता है मज़दूर बिगुल ये सभी ज़िम्मेदारियाँ बख़ूबी निभा रहा है। इसलिए कहना नहीं होगा कि जनता के बीच इसका नियमित पहुँचना बहुत ज़रूरी है।

अब कुछ बातें मैं अपने काम के हालात और उपस्थित चुनौतियों पर भी करना चाहूँगा। मेरे जैसे तमाम बैंक कर्मचारी काफ़ी अमानवीय हालात में काम कर रहे हैं। हालाँकि इसका भी अहसास इनमें से बहुतों को नहीं है। काफ़ी सारे ऑफ़िसर रैंक के अधिकारी वैसे तो मोटी तनख़्वाहें उठाते हैं लेकिन उनकी ज़िन्दगी में और ज्ञान-विवेक हीन खाये-पीये-अघाये पशु की ज़िन्दगी में ज़्यादा कुछ फ़र्क़ नहीं रह जाता है। पैसे-पूँजी और आने-पाई का हिसाब-किताब उनके अन्दर के मानवीय पक्ष को समाप्त कर डालता है। बैंकों में काम करने वाले पक्के अधिकारियों और पक्के कर्मचारियों की वैसे तो कई यूनियनें हैं परन्तु ये सब यूनियनवाद से अधिक कुछ नहीं करती हैं। मानवद्रोही पूँजीवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ राजनीतिक चेतना के प्रचार-प्रसार का तो सवाल ही नहीं है! सही राजनीतिक दिशा के अभाव में ये यूनियनें आर्थिक संघर्षों को लेकर भी असरदार आन्दोलन खड़ा करने में नाकाम साबित हो रही हैं। निजीकरण या प्राइवेटाइज़ेशन के ख़िलाफ़ भी तमाम बैंक यूनियनें सही ढंग से नहीं लड़ पायी हैं। निजी या प्राइवेट बैंक कर्मियों को तो और भी ज़्यादा दिक़्क़तों का सामना करना पड़ता है। सरकारी बैंक कर्मियों की तुलना में इनके हालात काफ़ी ख़राब और स्थिति अरक्षित होती है। आज के समय में सरकारी और सहकारी बैंकों में सबसे ज़्यादा संख्या ठेका या कॉण्ट्रैक्ट कर्मियों की है। सिक्योरिटी गार्ड, सफ़ाई कर्मी, चपरासी से लेकर प्रचार-प्रसार टीमों के बहुत सारे सदस्य कच्चे कर्मी ही होते हैं। लेकिन बैंक यूनियनें कभी भी इनके मुद्दों को नहीं उठाती हैं। मैनेजमेण्ट के द्वारा तबादले या ट्रांसफ़र का भय दिखाकर बैंक कर्मियों का शोषण किया जाता है और उनकी एकता पर चोट की जाती है पर बैंक यूनियनें यहाँ भी कुछ नहीं बोलती हैं। बैंक कर्मियों के ऊपर सरकारी योजनाओं का लक्ष्य या टारगेट पूरा करने का बोझ भी लगातार लदा ही रहता है। बैंक कर्मियों और यूनियनों का रिश्ता अब मात्र मेम्बरशिप का ही रह गया है। चन्दे की पर्ची कटाते रहो और फिर एक-दो दिन की नाम भर की हड़ताल की छुट्टी मनाते रहो, बस हो गया काम! बैंक यूनियनों के नेतृत्व में राजनीतिक सचेतनता और जुझारूपन का घोर अभाव है। यही कारण है कि इनका रवैया समझौतापरस्ती का ही रहता है। कर्मचारियों के ख़ाली पदों को भरने, दबाव में काम के अमानवीय हालात, पेंशन, वेतन सहित बैंक कर्मचारियों के बहुत सारे मसले अटके और लम्बित पड़े रहते हैं लेकिन यूनियनें कामयाबी का ढिंढोरा पीटती रहती हैं। मुझे लगता है बैंक कर्मचारियों को तमाम कच्चे कर्मियों को साथ लेकर नये सिरे से अपनी जुझारू यूनियनें खड़ी करनी होंगी। इसके अलावा बैंक कर्मियों को वर्ग सचेत होना होगा तथा अपनी आकांक्षाओं को देश की व्यापक जनता के हितों के साथ जोड़कर चलना होगा।

अन्त में मज़दूर बिगुल अख़बार के माध्यम से मैं आपको यही कहना चाहूँगा कि साथियो एकजुट होकर ही हम पूँजीवाद-साम्राज्यवाद का मुक़ाबला कर सकते हैं। संघर्ष और क़ुर्बानियों के द्वारा ही हम अपना, अपनी आने वाली पीढ़ी और अपने प्यारे देश का भविष्य सुरक्षित कर सकते हैं।

इन्क़लाब ज़िन्दाबाद,

– आपका साथी, रौशन कुमार

फ़रीदाबाद औद्योगिक क्षेत्र की एक आरम्भिक रिपोर्ट

(पेज 4 से आगे)

ज़्यादा पैसे पर टेस्ट कराना पड़ रहा है। इसके अलावा अस्पतालों में ख़ून की भी भारी कमी है और मरीज़ों के परिवारों को दिल्ली से प्लेटलेट्स बढ़ाने के लिए ख़ून का इन्तज़ाम करना पड़ रहा है।

2020 में स्वच्छ सर्वेक्षण के अनुसार फ़रीदाबाद देश के दस सबसे गन्दे शहरों में शामिल है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार फ़रीदाबाद की हवा सुरक्षित स्तर से पच्चीस गुना ज़्यादा दूषित है। इस रिपोर्ट के अनुसार फ़रीदाबाद दुनिया का दूसरा सबसे प्रदूषित शहर बन गया है। फ़रीदाबाद की मेहनतकश जनता न केवल अपने कार्यस्थल पर जानलेवा गैस और रसायनों से घिरी होती है बल्कि फ़ैक्टरी के बाहर भी उसे धूल, ज़हरीली हवा और गन्दा पानी ही मिलता है।

हम कह सकते हैं कि देश के अन्य औद्योगिक क्षेत्रों की तरह ही फ़रीदाबाद भी सरकार और पूँजीपति वर्ग के गठजोड़ से मज़दूरों को मुनाफ़े की चक्की में झोंक देता है। फ़ैक्टरी के बाहर जीने के लिए घोर अमानवीय स्थिति बनाता है ताकि उनके अन्दर कुछ बेहतर, रचनात्मक सोचने की न तो ऊर्जा बचे न उमंग। और वे मशीन में काम करते हुए बस एक मशीन बनकर रह जायें।

नोट : फ़रीदाबाद के सम्बन्ध में यह एक आरम्भिक रिपोर्ट है। यह रिपोर्ट इलाक़े में सर्वे और मज़दूरों से बातचीत के आधार पर तैयार की गयी है।

चीन का एवरग्रान्दे संकट

(पेज 13 से आगे)

चीनी संशोधनवादी राज्य व पार्टी को तात्कालिक तौर पर संकट पर क़ाबू पाने की विशेष क्षमता देती है, लेकिन केवल तात्कालिक तौर पर।

चीनी सरकार की समस्या यह है कि कुल मिलाकर बढ़ता हुआ ऋण पूरी अर्थव्यवस्था के लिए अन्ततोगत्वा प्रमुख ख़तरा बन जायेगा। ऋण के इस पहाड़ से निजात पाने का एकमात्र तरीक़ा उत्पादक क्षेत्र में उत्पादकता व लाभप्रभता को बढ़ाना तथा अनुत्पादक वित्तीय सट्टेबाज़ी को नियंत्रण में रखना होगा। पहले काम में मौजूदा परिस्थिति में ढाँचागत सीमाएँ हैं और दूसरे तरीक़े से वित्तीय दिवालियापन होता है जिससे मुनाफ़ा तेज़ी से कम हो जाता है और निजी पूँजीवादी उपक्रमों में निवेश की दर गिरती है। संशोधनवादी राज्य केवल तात्कालिक तौर पर लगाये गये अंकुशों के साथ संकट को अस्थायी रूप से नियंत्रित करने का प्रयास कर सकता है। राज्य आधारित विकास के अपने अन्तरविरोध हैं और यह चीन द्वारा अपनाये जा चुके पूँजीवादी फ़्रेमवर्क के दायरे में हमेशा नहीं चल सकता है। यह चीनी संशोधनवादी पार्टी और राज्य के लिए 'क्या करें क्या न करें' की स्थिति है। यह इस स्थिति को फ़िलहाल महज़ तात्कालिक तौर पर नियंत्रित कर सकता है। लेकिन यह अन्तरविरोध तात्कालिक निदानों और आनन-फ़ानन में उठाये गये कुछ विनियमन के क़दमों से नहीं सुलझाया जा सकता है। आने वाले वक़्त में यह बेहद गम्भीर रूप लेगा।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ
सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये
मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 9721481546, 9971196111
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 9721481546
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 5/- रुपये वार्षिक – 70/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 2000/- रुपये

हरियाणा में बेरोज़गारी के भयंकर होते हालात!

– इन्द्रजीत

सेण्टर फ़ॉर मॉनिटरिंग इण्डियन इकॉनमी (सीएमआईई) के ताज़ा आँकड़ों के अनुसार देश बेरोज़गारी की भयंकर दलदल में धँसता जा रहा है। सितम्बर 2021 में आये अगस्त माह के आँकड़ों के अनुसार देश में बेरोज़गारी की दर 8.3 प्रतिशत तक पहुँच गयी है। वहीं दूसरी ओर हरियाणा में बेरोज़गारी की दर 35.7 प्रतिशत तक जा पहुँची है जोकि देश के किसी भी राज्य में सबसे ज़्यादा और राष्ट्रीय बेरोज़गारी दर के चार गुणे से भी अधिक है। रोज़गार की इतनी बुरी स्थिति होने के बावजूद भी हरियाणा की खट्टर सरकार बड़ी ही बेशर्मी के साथ अपनी पीठ थपथपा रही है कि उसने हरियाणा के नौजवानों को रोज़गार दिये हैं! जबकि ज़िन्दगी के हालात और आँकड़े चीख़-चीख़कर कह रहे हैं कि रोज़गार पर इतना बड़ा संकट आज से पहले कभी नहीं आया था! विगत 30 अगस्त को ही हरियाणा के मुख्यमंत्री मनोहर लाल खट्टर ने अपनी सरकार के 2,500 दिन पूरे होने का जश्न मनाया था। इस दौरान हज़ारों पुलिसकर्मियों के पीछे छिपकर खट्टर साहब ने अपनी ख़ूब पीठ थपथपायी थी। आँकड़ों की सरकारी बाज़ीगरी के भ्रमजाल से मुक्त होकर देखा जाये तो हमें यहाँ महँगाई, बेरोज़गारी, जातिवाद, नशाख़ोरी और बढ़ते अपराध के असल हालात आसानी से दिख जायेंगे।

हरियाणा की भाजपा-जजपा ठगबन्धन सरकार रोज़गार पर कोई ठोस तथ्य पेश करने की बजाय सीएमआईई की उक्त रिपोर्ट पर ही सवाल उठा रही है। हमें रोज़गार के हालात पर सुव्यवस्थित सरकारी आँकड़े नहीं मिलते हैं, लेकिन हाल की चन्द भर्तियों में किये गये आवेदनों से ही हम अनुमान लगा सकते हैं कि हरियाणा में रोज़गार के हालात कितने ख़राब हैं। यमुनानगर कोर्ट में चपरासी के महज़ 10 पदों के लिए आवेदन करने वालों की संख्या 7,000 थी। इसी तरह से पानीपत में भी कोर्ट चपरासी के कच्चे पदों के लिए आवेदन करने वालों की संख्या 13,000 थी। महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय में डीसी रेट पर चपरासी के ही 92 पदों के लिए 22,000 युवाओं ने आवेदन किया था। 2019 में चतुर्थ श्रेणी कर्मियों के 18,212 पदों के लिए निकली भर्ती के लिए भी तक़रीबन 20 लाख युवाओं ने आवेदन किया था। इसी तरह से क्लर्क के 4,858 पदों के लिए 15 लाख से ज़्यादा छात्र-युवाओं ने आवेदन किया था। अभी हाल में ही पुलिस उप-अधीक्षक के 453 पदों के लिए 3 लाख से ज़्यादा युवाओं ने आवेदन किये थे। खट्टर और दुष्यन्त चाहे जितना गाल बजा लें असल बात यह है कि हरियाणा में रोज़गार के हालात एक अनार सौ बीमार वाले हो गये हैं। जो थोड़ी-बहुत सरकारी नौकरियाँ निकलती भी हैं वे भी राम भरोसे ही होती हैं। कई सालों तक भर्ती प्रकिया को लटकाकर ही रखा जाता है। ज़्यादातर भर्तियाँ सरकार की घोर लापरवाही के चलते रद्द हो जाती हैं फिर दोबारा से उन्हीं पदों के लिए आवेदन माँगें जाते हैं और पहले से ही बेरोज़गारी की मार झेल रहे नौजवानों से ही करोड़ों रुपये की कमाई कर ली जाती है। जो भर्ती पूरी भी होती है उसमें भी भ्रष्टाचार का ही बोलबाला रहता है। आम घरों के नौजवानों के लिए पक्का रोज़गार हासिल करना कभी न पूरा होने वाला सपना बन चुका है। सालों साल मेहनत करके भी स्थायी रोज़गार न हासिल कर पाने के चलते बड़ी संख्या में नौजवान अवसाद का शिकार हो रहे हैं। इस स्थिति के चलते नौजवानों में अपराधीकरण, नशाख़ोरी और आत्महत्या की घटनाएँ लगातार बढ़ती जा रही हैं।

ऐसी बात नहीं है कि नौजवानों को रोज़गार देने के लिए हरियाणा प्रदेश में अवसरों की कोई कमी है। अकेले सरकारी महकमों में ही लाखों पद रिक्त पड़े हैं। शिक्षा विभाग के सम्बन्ध में एक आरटीआई के जवाब में हरियाणा सरकार ने पिछले दिनों ही यह माना था कि प्रदेश में स्कूली शिक्षकों के 31,232 पद रिक्त हैं जबकि 2017 की हरियाणा अध्यापक संघ की 'डायरी' की रिपोर्ट कहती है कि हरियाणा में शिक्षकों के कुल 1,28,405 पदों में से 44,962 पद रिक्त हैं। कॉलेज और विश्वविद्यालयों के स्तर पर भी हज़ारों पद ख़ाली पड़े हैं। महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय के बारे में 2016 की कैग की रिपोर्ट कहती है कि यहाँ पर शिक्षकों की कुल संख्या में से 54 प्रतिशत पदों पर कोई स्थायी भर्ती नहीं है। इनमें से 27 प्रतिशत पद एडहॉक पर हैं तो 27 प्रतिशत पद रिक्त हैं। ऐसा ही हाल रोडवेज़, बिजली, सिंचाई, पीडब्लूडी, हूडा इत्यादि विभागों का भी है। जनसंख्या के अनुपात के हिसाब से हरियाणा में 18,000 बसें होनी चाहिए परन्तु फ़िलहाल हरियाणा परिवहन के बेड़े में केवल 4,000 बसें ही हैं। एक बस पर 6 नये रोज़गार सृजित होते हैं। अतः इस लिहाज़ से देखें तो अकेले परिवहन विभाग में ही 80,000 से ज़्यादा पद सृजित किये जा सकते हैं। यही नहीं रोडवेज़ की वर्कशॉपों में काम करने वाले मैकेनिकों की तो पिछले तक़रीबन दो दशक से कोई भर्ती ही नहीं की गयी है। एक अन्य आरटीआई के माध्यम से मिले सरकारी जवाब से यह पता चलता है कि हरियाणा में जेबीटी शिक्षकों के भी 6,000 के क़रीब पद रिक्त पड़े हैं। अभ्यर्थियों की ओर से दायर याचिका की सुनवाई के दौरान हाईकोर्ट दो बार इन पदों को भरने के आदेश हरियाणा सरकार को दे चुका है, कोर्ट के द्वारा सरकार पर ज़ुर्माना भी लगाया जा चुका है परन्तु पिछले 8 साल से सरकारों ने जेबीटी भर्ती के लिए कान तक नहीं हिलाये! कोर्ट के आदेश का हवाला देकर 1,983 पीटीआई शिक्षकों के पेट पर लात मारने वाली खट्टर की खटारा सरकार को जेबीटी भर्ती से जुड़े कोर्ट के आदेश पर साँप सूँघ गया है। नवम्बर 2012 वाली जेबीटी भर्ती के चयनितों को भी पाँच सालों तक लटकाकर रखा गया और इनमें से 1,259 को तो लो मैरिट के नाम पर चयन के बाद भी बाहर का रास्ता दिखा दिया गया था, इन्हें तो और भी ज़्यादा धक्के खाने पड़े थे।

भाजपा ने चुनाव से पहले नौकरियाँ देने को लेकर लम्बी-चौड़ी डींगें हाँकी थी किन्तु पिछले विधानसभा चुनाव से चन्द रोज़ पहले जाकर कुछ हज़ार नौकरियों की कुछ भर्तियाँ पूरी हुई हैं। रोडवेज़, बिजली, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे मूलभूत विभागों में ही लाखों-लाख पद अभी तक भी ख़ाली पड़े हैं। विभिन्न विभागों और महकमों के कर्मचारियों को पक्का करने का वायदा अधर में ही लटका है। प्रदेश के पढ़े-लिखे लाखों युवा लाचार हैं और छोटी-मोटी नौकरियों के पीछे दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं। असल में हरियाणा भाजपा को जनता के काम करने में कम और जातिवाद की राजनीति तथा अपने झूठ बोलने के कौशल पर अधिक भरोसा है! हरियाणा में 1995-96 में सरकारी-अर्ध सरकारी 4,25,462 नौकरियाँ थी जोकि 20 साल बाद घटकर मात्र 3,66,829 रह गयीं। यानी प्रदेश की तमाम सरकारें हर साल औसतन 3,100 नौकरियाँ खा गयी हैं!

भारतीय राज्य और सरकारें देश के संविधान को लेकर ख़ूब लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं। संविधान का अनुच्छेद 14 कहता है कि सभी को 'समान नागरिक अधिकार' हैं और अनुच्छेद 21 के अनुसार सभी को 'मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार' है। किन्तु ये अधिकार देश की बहुत बड़ी आबादी के असल जीवन से कोसों दूर हैं। क्योंकि न तो देश स्तर पर एक समान शिक्षा-व्यवस्था लागू है तथा न ही सभी को पक्के रोज़गार की कोई गारण्टी है! हर काम करने योग्य स्त्री-पुरुष को रोज़गार मिलने पर ही उसका

(पेज 7 पर जारी)

शिक्षा-रोज़गार अधिकार अभियान – उत्तर प्रदेश के दूसरे चरण के लिए प्रदेश स्तरीय प्रतिनिधि बैठक

सबको समान एवं निःशुल्क शिक्षा! सबको रोज़गार! शिक्षा और रोज़गार हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है!!

उत्तर प्रदेश सहित पूरे देशभर में हर दिन शिक्षा-रोज़गार की स्थिति बद से बदतर होती जा रही है। आज़ादी के बाद से सत्ता में आने वाली सभी पार्टियों ने जनता को केवल जुमलों, लच्छेदार भाषणों और झूठे वादों में ही उलझा रखा है। सभी पार्टियों का रवैया शिक्षा और रोज़गार के प्रति बेहद ग़ैर-ज़िम्मेदाराना और उदासीन रहा है, जिसका दंश आज प्रदेश की बहुत बड़ी मेहनतकश आबादी झेल रही है। शिक्षा और रोज़गार सम्बन्धित दस माँगों को लेकर उत्तर प्रदेश के विभिन्न हिस्सों में चलाये जा रहे 'शिक्षा-रोज़गार अधिकार अभियान – उत्तर प्रदेश' के दूसरे चरण की शुरुआत के मद्देनज़र दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा की एक प्रदेश स्तरीय प्रतिनिधि बैठक 30 अक्टूबर को इलाहाबाद के श्रम हितकारी केन्द्र में की गयी। इलाहाबाद, गोरखपुर, मऊ, चित्रकूट, अम्बेडकरनगर, कौशाम्बी, महराजगंज समेत प्रदेश के विभिन्न ज़िलों से आये प्रतिनिधियों ने 'शिक्षा-रोज़गार अधिकार अभियान' के दूसरे चरण की शुरुआत की तैयारी बैठक में भागीदारी की। बैठक में देश में शिक्षा और रोज़गार की आम स्थिति पर बात रखते हुए दिशा छात्र संगठन के अविनाश ने कहा कि निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों की चौतरफ़ा मार छात्रों-युवाओं सहित आम जनता झेल रही है। शिक्षा के क्षेत्र में यह स्थिति है कि देश के केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में शिक्षकों के 6,000 से ज़्यादा पद ख़ाली पड़े हैं। स्वायत्त और सेल्फ़ फ़ाइनेंस पाठ्यक्रमों के नाम पर छात्रों से बेतहाशा लूट की जा रही है। आज भारत में सरकारी स्कूलों के मुक़ाबले प्राइवेट स्कूलों की संख्या 450 गुना हो गयी है। उत्तर प्रदेश में क़रीब 18,000 ऐसे स्कूल हैं जो सिर्फ़ एक अध्यापक के भरोसे चल रहे हैं। इन स्कूलों की स्थिति सुधारने की जगह नयी शिक्षा नीति में 50 से कम छात्रों वाले स्कूलों को बन्द करने का प्रावधान किया जा रहा है। इसी तरह साफ़ तौर पर देखा जा सकता है कि नियमित शिक्षकों की भर्ती करके शिक्षा के तंत्र को दुरुस्त करने के बजाय इसे चौपट किया जा रहा है और शिक्षकों को संविदा पर रखा जा रहा है। जिस अनुपात में शिक्षकों की भर्ती हो रही है, उससे कहीं ज़्यादा शिक्षक सेवानिवृत्त हो रहे हैं। मोदी सरकार ने पिछले दिनों नयी शिक्षा नीति-2020 लागू करने के साथ एक तरफ़ जहाँ निजी विश्वविद्यालयों को लूट की खुली छूट दे दी है, वहीं दूसरी सरकारी संस्थाओं को अपना ख़र्च ख़ुद जुटाने को बोला गया है। ज़ाहिर है यह ख़र्च छात्रों की जेब से वसूला जायेगा और ऐसे में छात्रों की बहुत बड़ी आबादी के लिए विश्वविद्यालय परिसरों के दरवाज़े बन्द हो जायेंगे।

रोज़गार की बात करें तो सातवें वेतन आयोग के आँकड़ों के मुताबिक़ 1995 में केन्द्र सरकार के अलग-अलग विभागों में (सैन्य बलों को छोड़कर) कुल नौकरी करने वालों की संख्या 39 लाख 82 हज़ार थी, वह 2011 में घटकर 30 लाख 87 हज़ार पर आ गयी। पिछले दो सालों में 16 राज्यों मे कोई भर्ती ही नहीं हुई है। एसएससी-सीजीएल के लिए 2012 की तुलना में 2020 में केवल 40 प्रतिशत भर्तियाँ बची हैं। आईबीएसपी-पीओ में 2012 की तुलना में लगभग 20 प्रतिशत भर्तियाँ बची हैं। स्थिति यह है कि एक सीट के लिए औसतन 5000 फ़ॉर्म भरे जा रहे हैं। यह पूरी स्थिति छात्रों युवाओं को अवसाद, अपराध और नशाख़ोरी की तरफ़ धकेल रही है। हालत यह है कि इलाहाबाद जैसे शहरों में हर दिन छात्रों की आत्महत्या की ख़बरें आती हैं।

नौजवान भारत सभा – उत्तर प्रदेश राज्य कमेटी के सदस्य मित्रसेन ने अम्बेडकरनगर ज़िले में शिक्षा की स्थिति पर बात रखते हुए कहा कि ज़िले में शिक्षा की स्थिति काफ़ी बदहाल अवस्था में पहुँच चुकी है। आलापुर तहसील के 472 गाँवों के बीच प्राथमिक और उच्च-प्राथमिक विद्यालयों की संख्या लगभग 316 है जो आबादी की तुलना में ऊँट के मुँह में जीरे के बराबर भी नहीं है। शिक्षा की स्थिति का अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि तहसील में केवल 13 सरकारी इण्टर कॉलेज और सिर्फ़ एक महाविद्यालय है। लगभग सभी संस्थान अध्यापकों और अन्य कर्मचारियों की भयंकर कमी से जूझ रहे हैं। इस स्थिति में इलाक़े में प्राइवेट स्कूलों का एक तंत्र विकसित हो चुका है जिसमें से कई स्थानीय नेताओं सहित छुटभैये नेताओं के भी हैं। पिछले 2017-19 के बीच आलापुर की विधायक अनीता कमल ने 7 प्राइवेट विद्यालयों को विधायक निधि से 34 लाख 70 हज़ार रुपये सौंप दिये। बाद के दिनों में भी यह सिलसिला चलना जारी रहा। मित्रसेन ने क्षेत्र में रोज़गार के संकट, मज़दूरी की स्थिति और पलायन करने वाले युवाओं की आबादी पर भी विस्तार से बात रखी।

अन्त में प्रसेन ने शिक्षा-रोज़गार अधिकार अभियान की आगामी कार्ययोजना से सम्बन्धित प्रस्ताव पेश किये। बैठक में नीशु, राजू, अनिरुद्ध, प्रमोद, सुरेश, प्रसेन, अनवर, चन्द्रप्रकाश, रोमेश, प्रदीप आदि प्रतिनिधियों ने बात रखी। संचालन अमित ने किया।

इस दौरान यह निर्णय लिया गया कि शिक्षा-रोज़गार अधिकार अभियान-उत्तर प्रदेश को गति देने के लिए जगह-जगह गाँवों-मुहल्लों के स्तर पर कमेटियों का निर्माण किया जायेगा। छात्र-बहुल इलाक़ों में एक-एक छात्र तक पहुँचने के लिए भी योजना बनायी गयी। साथ ही शिक्षा और रोज़गार के संकट पर केन्द्रित नुक्कड़ नाटकों, गीतों, पर्चे आदि के माध्यम से तथा सोशल मीडिया पर प्रचार की रणनीति बनायी गयी।

– बिगुल संवाददाता

फ़रीदाबाद औद्योगिक क्षेत्र की एक आरम्भिक रिपोर्ट

– सार्थक, लता

आज़ादी के बाद 1949 से फ़रीदाबाद को एक औद्योगिक शहर की तरह विकसित करने का काम किया गया। भारत-पाकिस्तान बँटवारे के समय शरणार्थियों को यहाँ बसाया गया था। उस दौर से ही यहाँ छोटे उद्योग-धन्धे विकसित हो रहे थे। जल्द ही यहाँ बड़े उद्योगों की भी स्थापना हुई और 1950 के दशक से इसका औद्योगीकरण और तीव्र विकास आरम्भ हुआ। मुग़ल सल्तनत के काल से ही फ़रीदाबाद दिल्ली व आगरा के बीच एक छोटा शहर हुआ करता था। आज की बात की जाये तो फ़रीदाबाद देश के बड़े औद्योगिक शहरों में नौवें स्थान पर है। फ़रीदाबाद में 8000 के क़रीब छोटी-बड़ी पंजीकृत कम्पनियाँ हैं। यहाँ मुख्य रूप से भारी मशीन, हल्की मशीन, इलेक्ट्रिकल और इलेक्ट्रॉनिक उपकरण, आयरन प्रोसेसिंग, रबड़, टेक्सटाइल, केमिकल व पैकेजिंग उद्योग हैं। बड़ी कम्पनियों में यहाँ जेसीबी, लखानी, एस्कॉर्ट, ऐस, गुडइयर, ओरियण्ट आदि हैं। उद्योगों का एक बड़ा हिस्सा बड़ी ऑटोमोबाइल कम्पनियों की वेण्डर कम्पनियों का है। ये वेण्डर कम्पनियाँ मारुति, होण्डा, बजाज, ह्युण्डाई, टाटा, आइशर जैसे बड़ी कम्पनियों के छोटे-बड़े पुर्ज़े सप्लाई करती हैं।

मज़दूरी की हालत

कोरोना के दो लॉकडाउन के दौरान जिस तरह छँटनी और तालाबन्दी की मार ने मज़दूरी को प्रभावित किया है उससे फ़रीदाबाद भी किसी भी रूप में अछूता नहीं है। यहाँ अधिकतर कम्पनियों ने मज़दूरों की संख्या आधी या उससे भी कम कर दी है। मज़दूरी घटा दी गयी है और काम के घण्टे बढ़ गये हैं। अक्सर बड़ी औद्योगिक इकाइयों में उजरत की स्थिति छोटी इकाइयों की तुलना में थोड़ी बेहतर होती है। फ़रीदाबाद औद्योगिक शहर के बीचों-बीच स्थित सेक्टर 6, सेक्टर 24, सेक्टर 25, सेक्टर 58, 59 आदि में कम्पनियाँ अपेक्षाकृत बड़ी हैं। यहाँ ज़्यादातर कम्पनियों में डेढ़ सौ से ज़्यादा मज़दूर काम करते हैं। इनमें से जेसीबी, एस्कॉर्ट्स, ऐस, गुड ईयर, ओरियण्ट, शिवालिक, लखानी जैसे कुछ बड़ी कम्पनियाँ भी हैं जहाँ हज़ार से ऊपर मज़दूर काम करते हैं। औसतन इस कम्पनियों में हेल्परों को आठ से साढ़े नौ हज़ार, ऑपरेटरों को दस से बारह हज़ार और टेक्नीशियनों को चौदह से सोलह हज़ार तनख़्वाह मिलती है। छोटी कम्पनियाँ मज़दूरी भी कम देती हैं और काम के घण्टे भी अधिक रखती हैं। सरूरपुर, नंगला, गाज़ीपुर मुख्य फ़रीदाबार शहर से 10 से 12 किलोमीटर की दूरी पर हैं। इन इलाक़ों में छोटी कम्पनियाँ हैं। यहाँ औसत एक फ़ैक्टरी में 30 से 40 मज़दूर काम करते हैं। इन कम्पनियों में मज़दूरी कम होती है और काम के घण्टे अधिक। इन कम्पनियों में प्रति माह हेल्परों को छः से आठ हज़ार और ऑपरेटरों को आठ से दस हज़ार तक ही मिलते हैं। फ़रीदाबाद मुख्य शहर से सात-आठ किलोमीटर दूर दिल्ली मथुरा हाइवे पर स्थित पृथला अभी औद्योगिक क्षेत्र की तरह विकसित हो रहा है। हालाँकि यहाँ बड़ी कम्पनियों की बड़ी इकाइयाँ हैं इसके बावजूद मज़दूरी कम है। इनमें हेल्परों को औसतन 7 से 8 हज़ार और ऑपरेटरों को 9 से 10 हज़ार रुपये मिलते हैं। जब बात आती है औरतों की तो हर जगह पुरुषों की तुलना में मज़दूरी कम और काम की परिस्थितियाँ ज़्यादा दुरूह हैं। सरूरपुर, नंगला, गाज़ीपुर में महिला मज़दूरों को मात्र छः से सात हज़ार ही मिलता है। नंगला व गाज़ीपुर के मज़दूरों का कहना है कि कई कम्पनियाँ ऐसी भी हैं जो दो-दो महीने तक वेतन नहीं देती हैं। पृथला के मज़दूरों का कहना है कि "उन्हें एक ग्रेड पीछे दिया जाता है", यानी अर्धकुशल मज़दूर को अकुशल मज़दूर की मज़दूरी दी जाती है और कुशल मज़दूर को अर्धकुशल मज़दूर की मज़दूरी मिलती है।

यहाँ की कई कम्पनियों में तीन तरीक़े का पेमेण्ट सिस्टम काम करता है। कुछ मज़दूरों को 'पीस रेट' पर रखा जाता है, कुछ को दिहाड़ी पर और कुछ महीने का वेतन पाते हैं। मज़दूरों की यह तीन श्रेणियाँ अस्थायी मज़दूरी के अन्तर्गत आती हैं। इन तीनों में 'पीस रेट' और दिहाड़ी पर काम करने वालों का शोषण सबसे भयंकर होता है और साथ ही काम छूटने की तलवार इन पर लगातार लटकती रहती है। महीने में कुछ दिन काम मिलते हैं कुछ दिन नहीं। कभी-कभी तो आधे दिन में ही काम से बाहर कर दिये जाते हैं। ठेकाकरण व कैज़ुअलाइज़ेशन के इस रक्तपिपासु रूप से पूँजीपति वर्ग बेहद प्रभावी तरीक़े से बिना किसी सुरक्षा का भार उठाये मज़दूर का क़तरा-क़तरा निचोड़ता है। इस तरह अलग-अलग श्रेणियों में बाँट कर उसके मोलभाव की शक्ति कमज़ोर करता है। यह सब उसके वर्ग के तौर पर संगठित होने की प्रक्रिया में अड़चन पैदा करता है।

बोनस और ओवरटाइम का जो क़ानूनी अधिकार मज़दूरों ने किसी ज़माने में लड़ कर लिया था वे अधिकार काग़ज़ पर ही रह गये हैं (चार लेबर कोड के ज़रिए मोदी सरकार उन्हें काग़ज़ से भी मिटाने के लिए आतुर है)। दो-तीन कम्पनियों को छोड़ कर किसी भी कम्पनी के मज़दूर को न ही बोनस मिलता है और न ही डबल रेट पर ओवरटाइम। कई कम्पनियाँ ऐसी हैं जो छः महीने के बाद पुराने मज़दूरों को निकाल कर नये मज़दूरों को रख लेती हैं ताकि उन्हें स्थाई न बनाना पड़े और पीएफ़ जैसी सुविधाएँ न देनी पड़ें।

सिंगल रेट से मिलने वाले ओवरटाइम में भी भयंकर धाँधली होती है। ठेकेदार मज़दूरों के खाते में महीने में दो-तीन घण्टे ओवरटाइम कम दिखाते रहते हैं और अपनी जेब गर्म कर लेते हैं। यह धाँधली खुले तौर पर होती है।

काम की स्थिति

देश के सभी असंगठित औद्योगिक क्षेत्रों की तरह ही फ़रीदाबाद में भी मज़दूर भयंकर असुरक्षित स्थिति में काम करते हैं। ज़्यादातर कम्पनियाँ मज़दूरों को जूते, दस्ताने, मास्क या हेलमेट नहीं देतीं। जिन कम्पनियों ने जूता पहनना अनिवार्य रखा है ऐसी कम्पनियाँ भी मज़दूरों को जूते नहीं देतीं। कुछ कम्पनियों-कारख़ानों के अन्दर दुर्घटना की स्थिति में चिकित्सीय देखरेख व अन्य उचित क़दम उठाने की थोड़ी-बहुत व्यवस्था होती है। बाक़ी कम्पनियों के बारे में यही कहा जा सकता है कि जो जूते तक न दे उनसे एम्बुलेंस की क्या ही उम्मीद की जाये। आये दिन कम्पनियों में किसी न किसी दुर्घटना की चपेट में मज़दूर आते रहते हैं। फ़रीदाबाद और पलवल के बीच स्थित पृथला में काम की स्थिति और भी बदतर है। पृथला की फ़ैक्टरियों में दुर्घटनाएँ एक आम बात है। मज़दूरों के हाथ-पैर कट जाते हैं और कम्पनी उन्हें अस्पताल तक ले जाने तक का इन्तज़ाम नहीं करती। कटे हाथ या कटी उंगली लेकर मज़दूर इन्तज़ार में रहते हैं कि कोई उन्हें अस्पताल पहुँचा देगा। दुर्घटना के बाद कम्पनी प्रबन्धन मुआवज़ा और इलाज के बारे में ज़ुबानी जमा ख़र्च कर मुद्दे को दबा देता है। इलाज का ख़र्च मज़दूरों को ख़ुद ही उठाना पड़ता है। मज़दूर जब काम पर वापस लौटता है तो ठेकेदार और प्रबन्धन काम देने से साफ़ इन्कार कर देते हैं। अगर भूले-भटके रख भी लेते हैं तो काम के दौरान इस क़दर प्रताड़ित करते हैं कि तंग आकर मज़दूर ख़ुद ही नौकरी छोड़ दे। दुर्घटनाओं की गम्भीरता और बढ़ती संख्या साफ़ दिखलाती है कि फ़ैक्टरियों के अन्दर सुरक्षा की कितनी बदइन्तज़ामी है। 'कारोबार में सहूलियत' के नाम पर सीधे-सीधे मुनाफ़े की वेदी पर मज़दूरों की बलि चढ़ायी जा रही है।

अब कई कम्पनियाँ फ़रीदाबाद शहर से बाहर जा रही हैं। प्रशासन और सरकार का कहना है कि फ़रीदाबाद 'स्मार्ट सिटी' बनने जा रहा है इसलिए कम्पनियों को यहाँ से दूसरी जगह भेजा जा रहा है। लेकिन सच्चाई तो यह है कि कम्पनियाँ ख़ुद फ़रीदाबाद के बाहर जाना चाहती हैं। कम्पनियों के शहर की सीमा की ओर पलायन की एक अहम वजह है – ऐसी जगह की तलाश जहाँ नियम-क़ानूनों की परवाह किये बग़ैर ताबड़-तोड़ मुनाफ़ा कमाया जा सके। वहीं दूसरी वजह है फ़रीदाबाद के मज़दूरों के संघर्ष का इतिहास। हालाँकि आज फ़रीदाबाद में मज़दूर आन्दोलन एक विपर्यय की स्थिति से गुज़र रहा है लेकिन बीते सालों में फ़रीदाबाद जुझारू मज़दूर आन्दोलनों का साक्षी रहा है। आज भी उन संघर्षों से हासिल कई अधिकार हैं जो छिन तो रहे हैं लेकिन जिन्हें एक झटके में समाप्त करना सम्भव नहीं है। इसके अलावा उस दौर को जीने वाले मज़दूरों की यादों में बीते वर्षों के संघर्षों की कामयाबी और नाकामयाबी की बातें ताज़ा हैं। यह पीढ़ी अपनी युवा पीढ़ी को इस इतिहास से अवगत कराती है। लेकिन पृथला, नंगला, डबुआ जैसे नये बसे औद्योगिक इलाक़ों में मज़दूरों की सामूहिक स्मृति में मज़दूर आन्दोलन की कोई याद या कोई मिसाल नहीं है। यह मज़दूर आबादी संघर्ष से प्राप्त अधिकारों और संघर्ष के इतिहास से पूरी तरह कटी हुई आबादी है।

कुछ भयंकर दुर्घटनाएँ जिनके ख़बर बनने से पहले सबूत तक मिटा दिये गये

कम्पनियाँ चाहे बड़ी हों या छोटी, सुरक्षा इन्तज़ाम में भारी लापरवाही की क़ीमत फ़रीदाबाद के मज़दूरों को अपनी जान देकर चुकानी पड़ती है। मज़दूरों का कहना है कि 2009 में सेक्टर 24 में बनी लखानी फ़ुटवेयर्स की एक फ़ैक्टरी में एक भीषण आग लगी जिसमें लगभग 700 मज़दूर जल कर मर गये। मगर अख़बारों और न्यूज़ चैनलों ने बात को दबाते हुए बस नौ लोगों के मरने की पुष्टि की। इस तरह की दुर्घटनाओं की रिपोर्टिंग के समय पूँजीवादी हितों की सेवा करने वाले सारे अख़बार और न्यूज़ चैनल "निष्पक्ष पत्रकारिता" का चोगा उतारकर मज़दूरों की लाशों पर व्यापार करते हैं। 700 मज़दूरों को मौत की घाट सुलाने वाले लखानी के मालिक को पुलिस, जेल और कोर्ट किसी का भी सामना नहीं करना पड़ा। लेकिन इसी मालिक के कहने पर पुलिस ने मरे मज़दूरों के परिजनों पर लाठी चलवायी। मज़दूरों का कहना है कि इसी तरह 2012 में शिवालिक प्रिण्ट्स लिमिटेड में एक बॉयलर फटने से कई मज़दूर जल कर मर गये। मगर शिवालिक ने इस पूरे मुद्दे को इस तरह दबाया कि आज तक इसकी कोई चर्चा किसी ऑनलाइन प्लेटफ़ार्म पर भी नहीं मिलती है। इसी से मज़दूरों को यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि पुलिस, प्रशासन से लेकिर सभी नेता और जज पूँजीपतियों की सेवा में लगे हैं। अपने पैसे से ये अख़बार और न्यूज़ चैनल ख़रीदते हैं जो वही दिखाते और बताते हैं जो पूँजीपतियों के हित में होता है।

छुट्टियों की बात करें तो मुख्य फ़रीदाबाद में स्थित बड़ी कम्पनियाँ तो सरकारी छुट्टियों में छुट्टी दे दिया करती हैं मगर सरूरपुर, नंगला, गाज़ीपुर की छोटी कम्पनियाँ और पृथला की कम्पनियाँ सरकारी छुट्टियों में भी मज़दूरों को काम करने के लिए मजबूर करती हैं। कोई मज़दूर अगर बिना बोले छुट्टी करता है तो तीन-चार दिन तक उसे काम पर लेते ही नहीं हैं। कम वेतन, न बोनस, न ओवरटाइम, ठेकेदारों की धाँधली, सुरक्षा इन्तज़ामों की अनदेखी के अलावा काम की सघनता को बढ़ा कर मुनाफ़े को बढ़ाया जाता है। हेलमेट बनाने वाली स्टड, मोटर बनाने वाली पीआईसीएल और इम्पीरियल ऑटो में काम कर चुके सागर बताते हैं कि उनके पुराने कार्यस्थलों में प्रबन्धन ने जानबूझकर असेम्बली लाइन को ज़्यादा तेज़ कर दिया था ताकि काम की सघनता बढ़ जाये। यानी उतने ही समय में ज़्यादा काम। सागर जैसे हज़ारों मज़दूरों को रात में भी बारह घण्टे खड़े होकर असेम्बली लाइन पर काम करना होता है। कम्पनी में बस आधे घण्टे का लंच ब्रेक और दस मिनट का चाय ब्रेक होता है। मज़दूरों को अपना सारा काम इसी दौरान भागते हुए करना पड़ता है और वापस असेम्बली लाइन पर ब्रेक ख़त्म होने तक लौटना होता है। लेट होने पर सुपरवाइज़र और ठेकेदार की डाँट सुननी पड़ती है और मज़दूरी कट जाने का भी ख़तरा होता है। साथ ही मज़दूरों को और ज़्यादा बाँटने के लिए कम्पनियाँ एक ठेकेदार नहीं बल्कि सात-आठ ठेकेदारों को नियुक्त करती हैं। ठेकेदार स्थानीय मज़दूरों को कम नियुक्त करते हैं क्योंकि लोकल मज़दूरों के पास प्रवासी मज़दूरों की तुलना में ज़्यादा मोलभाव की शक्ति होती है और वे अन्यायपूर्ण आदेशों का बहुत हद तक विरोध भी करते हैं।

जेसीबी, एस्कॉर्ट्स आदि कुछ बड़ी कम्पनियों को छोड़ दिया जाये तो फ़रीदाबाद में किसी भी कम्पनी में कोई यूनियन नहीं है। जिन बड़ी कम्पनियों में यूनियनें हैं वे यूनियनें सिर्फ़ प्रबन्धन के हित साधने का ही काम करती हैं। यूनियन चुनावों में केवल स्थाई मज़दूरों को ही मतदान करने का हक़ देती हैं। इससे ठेका मज़दूरों की एक बड़ी आबादी अपने प्रतिनिधि चुनने के जनवादी हक़ से वंचित रह जाती है। मज़दूरों से बातचीत के दौरान सभी ने यह माना कि पुरानी फ़ैक्टरी-आधारित यूनियनें आज फ़ैक्टरियों के छोटे होते आकार और तेज़ी से समाप्त होते श्रम क़ानूनों की स्थिति में निष्प्रभावी-सी हो गयी हैं। आज के दौर में इलाक़ाई और पेशा-आधारित नये तरीक़े की यूनियन बनाने की ज़रूरत को मज़दूरों ने स्वीकार किया। साथ ही पुराने मज़दूरों में संशोधनवादी ट्रेड यूनियनों की समझौतापरस्ती और मौक़ापरस्ती से भी काफ़ी असन्तोष है।

रिहायश की स्थिति

फ़रीदाबाद औद्योगिक क्षेत्र में संजय कॉलोनी, सुभाष कॉलोनी, राजीव कॉलोनी, भगत सिंह कॉलोनी, सिही गाँव आदि मज़दूरों के रिहायशी इलाक़े हैं। इन इलाक़ों में छोटे-छोटे कमरों में दो, तीन या चार मज़दूर साथ रहते हैं। कई मज़दूर अपने पूरे परिवार के साथ इन छोटे-छोटे सीलन-भरे अँधेरे कमरों में रहते हैं। कम्पनी में कमरतोड़ श्रम कर लौटने के बाद उन्हीं बिना खिड़की, बिना हवा वाले बन्द कमरों में मज़दूर खाना भी पकाते हैं। इन छोटे माचिस के डिब्बे जैसे कमरों में न सूरज की रोशनी आती है और न हवा। कम वॉट के बल्ब में मज़दूर खाना पकाता-खाता है, छुट्टी के दिन मोबाइल पर कुछ देखकर अपना मनोरंजन कर लेता है। उसी ढिबरी-सी रोशनी में उसके बच्चे पढ़ाई भी करते हैं। अक्सर एक मंज़िल पर 10 से 15 कमरे बने होते हैं और इतने कमरों पर एक या दो सामूहिक शौचालय और स्नानघर। कमरों के बाहर लाइन से पानी भर कर बाल्टियाँ रखी होती हैं क्योंकि पानी निर्धारित सीमित समय के लिए ही आता है। इन मकानों के कमरों का किराया दो से ढाई हज़ार रुपये होता है। मकानमालिक अपनी मर्ज़ी के अनुसार आठ-नौ-दस रुपये प्रति यूनिट बिजली का बिल लेता है। मज़दूरों को नहाने-धोने के पानी के लिए भी सौ-दो सौ रुपये देने पड़ते हैं और पीने का पानी ख़रीदना होता है।

घर का किराया, बिजली और पानी का पैसा देने के बाद मज़दूरी का बड़ा हिस्सा खाने-पीने के सामान और गैस सिलिण्डर में जाता है। कई मकानमालिक मकान में ही किराने की दुकान खोल लेते हैं और किरायेदारों को वहाँ से ही समान लेने के लिए मजबूर करते हैं। मज़दूरों के रिहायशी इलाक़ों की सँकरी गलियों में थोड़ी-सी बारिश होने के बाद कई दिनों तक पानी जमा रहता है। इन इलाक़ों में नगर निगम की तरफ़ से साफ़-सफ़ाई भी नहीं होती है। मज़दूर इलाक़ों के साथ नगर निगम का सौतेला व्यवहार सिर्फ़ साफ़-सफ़ाई ही नहीं बल्कि हर पहलू में दिखता है। किसी मध्य वर्ग के रिहायशी इलाक़े में अच्छी, साफ़-सुथरी सड़कें होती हैं, रास्तों के किनारे पेड़ और जगह-जगह पार्क दिखते हैं तो वहीं दूसरी ओर मज़दूर इलाक़ों में गन्दी और धूल और कीचड़ से भरी सड़कें जिसके दोनों ओर गन्दी नालियाँ बज-बजा रही होती हैं। गन्दगी और जमा हुए पानी की वजह से ही फ़रीदाबाद में डेंगू अभी तेज़ी से बढ़ रहा है जिसकी मार भी सबसे ज़्यादा मज़दूर-मेहनतकश आबादी पर ही पड़ रही है। सरकारी अस्पतालों में टेस्टिंग किट ख़त्म हो गयी हैं और लोगों को मजबूरन प्राइवेट अस्पतालों में कई गुना

(पेज 2 पर जारी)

नोएडा के निर्माण की दास्तान : चमचमाती आलीशान इमारतों के पीछे छिपी मेहनतकशों की अँधेरी दुनिया

– रूपेश, सुमित, सत्येन्द्र

दिल्ली से जब हम नोएडा में प्रवेश करते हैं तो गगनचुम्बी इमारतें, बड़े-बड़े आलीशान मॉल, मार्केट, चमचमाती सड़कें, एक्सप्रेस-वे आदि को देखकर लगता है तेज़ी से विकसित हो रहा नोएडा-ग्रेटर नोएडा विकास की एक नयी इबारत लिख रहा है। जब आप नोएडा-ग्रेटर नोएडा के चमकदार इलाक़ों से होकर गुज़रते हैं तो दिल्ली में बड़े-बड़े होर्डिंगों के माध्यम से उत्तर प्रदेश के विकास की जो तस्वीर पेश करने की कोशिश फ़ासिस्ट योगी सरकार कर रही है वह सच लगने लगती है। पर जैसे-जैसे आप राजधानी से सटी इस औद्योगिक नगरी के अन्दर घुसते जायेंगे, इस चमक के पीछे का अँधेरा नज़र आने लगेगा।

गगनचुम्बी आवासीय परिसरों के समानान्तर नोएडा-ग्रेटर नोएडा के गाँवों, अनधिकृत कॉलोनियों, झुग्गी बस्तियों में रहने वाले लाखों मेहनतकशों की आबादी भी तेज़ी से बढ़ती जा रही है। यहाँ रहने वाले लोग किस प्रकार का नारकीय जीवन बिता रहे हैं; यह जानने के लिए इस तथ्य पर ग़ौर करना ही काफ़ी होगा कि कमरतोड़ महँगाई के दौर में भी महज़ 7-9 हज़ार रुपये प्रति माह की आय पर लोग गुज़ारा कर रहे हैं। हिण्डन नदी के किनारे बसी "अनधिकृत" कॉलोनियों में लोगों को सड़क, बिजली, पानी जैसी मूलभूत सुविधाएँ भी हासिल नहीं हैं।

आज़ादी के बाद के शुरुआती 20 वर्षों में नेहरू काल में भारतीय पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास की जो नींव डाली गयी; इन्दिरा, राजीव गाँधी के अगले 25 वर्षों के शासन काल ने उस पर तेज़ी से "विकास" की इमारत का निर्माण किया। देश के अलग-अलग हिस्सों में सुव्यवस्थित औद्योगिक नगरों का निर्माण उभरते हुए नवधनाढ्य वर्ग के लिए चमचमाते आवासीय परिसरों का निर्माण, तेज़ी से पैर पसारती राष्ट्रीय-बहुराष्ट्रीय कार कम्पनियों की महँगी गाड़ियों के फर्राटा भरने के लिए चौड़ी-चौड़ी सड़कों, एक्सप्रेस-वे, फ़्लाई ओवरों और अण्डरपासों का निर्माण किया गया।

राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली से सटे हुए इलाक़े भी इसी विकास का हिस्सा थे। फ़रीदाबाद, गुरुग्राम (गुड़गाँव), सोनीपत, पानीपत, ग़ाज़ियाबाद और नोएडा-ग्रेटर नोएडा जैसे शहरों के पिछले 40-45 वर्षों के विकास की कहानी भारत में पूँजीवादी विकास की तेज़ रफ़्तार की गवाह है।

नोएडा के निर्माण का इतिहास

नोएडा एक नियोजित शहर है, जो आपातकाल के दौर में 17 अप्रैल 1976 को अस्तित्व में आया। दिल्ली में बढ़ते उद्योगों व जनसंख्या के दबाव को कम करने के लिए इसकी स्थापना की गयी थी। ग़ैर-परम्परागत औद्योगिक इकाइयों के साथ यहाँ पर बड़ी संख्या में आईटी कम्पनियाँ हैं। साथ ही आईटीएस, बीपीओ, बीटीओ और केपीओ की कम्पनियों का भी यह हब है। जो कि बैंकिंग, वित्तीय सेवाओं, बीमा, फ़ार्मा, ऑटो, फ़ास्ट-मूविंग उपभोक्ता वस्तुओं और विनिर्माण जैसे विभिन्न क्षेत्रों में काम करती हैं। नोएडा आईटी सेवाओं को आउटसोर्स करने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का एक प्रमुख केन्द्र है।

यहाँ पर जेवर इण्टरनेशनल एयरपोर्ट बनाया जा रहा है, नोएडा-आगरा को जोड़ने वाला देश का पहला निजी एक्सप्रेसवे भी यहाँ पर स्थित है। पूर्व-पश्चिम व उत्तर-दक्षिण कॉरिडोर दोनों यहाँ पर आकर मिलते हैं, जो अभी निर्माणाधीन हैं। इसके आसपास औद्योगिक सेक्टर बनाये जा रहे हैं, जहाँ पर देश-विदेश की लगभग 200 कम्पनियों को ज़मीन दी जा रही है, यह क्षेत्र न्यू नोएडा के नाम से विकसित किया जा रहा है।

नोएडा व ग्रेटर नोएडा की जनसंख्या 10 लाख है। (2011 की जनगणना के अनुसार) लेकिन इससे भी अधिक संख्या में यहाँ पर विभिन्न कम्पनियों में कार्यरत कर्मचारी रहते हैं। यहाँ पर भवन निर्माण से जुड़े मज़दूरों की अच्छी-ख़ासी आबादी रहती है, साथ ही विभिन्न कम्पनियों में काम करने वाले कुशल-अकुशल मज़दूर लाखों की संख्या में यहाँ पर निवास करते हैं। इतना विकसित शहर होने के बाद भी, इस शहर में लगभग 250 ऐसी कॉलोनियाँ हैं जहाँ पर लोग बिना किसी सुविधा के रहते हैं। सरकारें इन कॉलोनियों को अवैध बोलकर तोड़ने की कोशिश करती रहती हैं।

दिल्ली के ओखला औद्योगिक क्षेत्र के विस्तार के तौर पर नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण (New Okhala Industrial Development Authority) की स्थापना की गयी। प्रारम्भ में 12 सेक्टर बसाये गये जिसमें सेक्टर 1 से 10 औद्योगिक थे और 11 मिश्रित तथा 12 आवासीय सेक्टर थे। दूसरे दौर में फ़ेज़-2 का औद्योगिक क्षेत्र भारत का पहला विशेष आर्थिक क्षेत्र (NSEZ) था।

तीसरे चरण में सेक्टर 14 से 62 तक और चौथे चरण में सेक्टर 63 से 168 तक के निर्माण की परिकल्पना को धीरे-धीरे धरातल पर उतारा गया। उसके बाद फिर ग्रेटर नोएडा के अलग-अलग हिस्सों का विकास किया गया जिनमें औद्योगिक क्षेत्र, आवासीय सोसायटियाँ, संस्थागत क्षेत्र, व्यावसायिक परिसर आदि हैं। उसके बाद यमुना एक्सप्रेस-वे के किनारे बसा हुआ क्षेत्र है जो कि यमुना एक्सप्रेस-वे विकास प्राधिकरण के अन्तर्गत आता है। आज की तारीख़ में नोएडा, ग्रेटर नोएडा विकास प्राधिकरण और यमुना एक्सप्रेस-वे विकास प्राधिकरण मुख्यतः यह तीन विकास प्राधिकरण हैं जो इस पूरे शहर की विकास परियोजनाओं के क्रियान्वयन के लिए ज़िम्मेदार हैं।

शुरुआती दौर में बसे औद्योगिक क्षेत्रों में काम करने के लिए आये हुए प्रवासी मज़दूरों को सेक्टर 4, 5, 8, 9 और 10 के बीच में झुग्गियों में बसाया गया। इन सेक्टरों के अन्तर्गत आने वाले गाँवों (नया बास, हरौला, झुण्डपुरा) आदि के ग्रामीणों ने मज़दूरों के लिए किराये के मकानों व लॉजों का निर्माण कराया। यहाँ एक कमरे में चार-चार मज़दूर रहते हैं। जैसे-जैसे नोएडा का विकास होता गया वैसे-वैसे मज़दूरों की आबादी बढ़ती गयी औद्योगिक मज़दूरों के साथ-साथ निर्माण कार्य में लगे मज़दूरों की संख्या भी तेज़ी से बढ़ी।

आवासीय परिसरों के निर्माण क्षेत्र में प्राइवेट बिल्डरों के उतरते ही नोएडा, ग्रेटर नोएडा और यमुना एक्सप्रेस-वे विकास प्राधिकरणों के अन्तर्गत चारों तरफ़ ऊँची इमारतों के निर्माण पर ज़ोर बढ़ गया। दिल्ली मेट्रो रेल का नोएडा तक विस्तार और आज की तारीख़ में नोएडा के अपनी मेट्रो सेवा के शुरुआत के साथ-साथ पिछले 20 वर्षों का विकास बहुत तेज़ गति से हुआ है।

वर्तमान में पूरे नोएडा-ग्रेटर नोएडा क्षेत्र में हज़ारों छोटी-बड़ी औद्योगिक इकाइयाँ सक्रिय हैं। कपड़े से लेकर कार तक, मशीन से लेकर मोबाइल तक, खिलौने से लेकर खाद्य पदार्थों तक, कॉल सेण्टर से लेकर आईटी कम्पनियों तक के बड़े-बड़े ऑफ़िस यहाँ स्थापित हैं। यहाँ की फ़ैक्टरियों में काम करने वाले मज़दूर इन्हीं औद्योगिक क्षेत्रों के आस-पास के गाँवों में तेज़ी से बस रही "अनधिकृत" कॉलोनियों में नारकीय स्थित में रहने को मजबूर हैं।

गाँवों के धनी किसानों ने ज़मीन के मुआवज़े से मिले पैसों से 100 से लेकर 500 कमरों तक के लॉजों का निर्माण करवा दिया जिनमें मज़दूर परिवार सहित रहते हैं। इतने विशाल औद्योगिक क्षेत्र की विकास परियोजना की रूपरेखा तैयार करने वालों ने इन औद्योगिक क्षेत्रों में काम करने वाले मज़दूरों की रिहायश के लिए कोई इन्तज़ाम नहीं किया।

मज़दूरों के श्रम के बिना न तो नोएडा-ग्रेटर नोएडा का निर्माण किया जा सकता था और न ही इसका संचालन सम्भव है। फिर भी नीति निर्धारकों और सरकार द्वारा मज़दूरों के रिहायशी मकान क्यों नहीं बनवाये गये? उनकी सुविधा के लिए अस्पताल, बच्चों के लिए स्कूल क्यों नहीं बनवाये? ज़ाहिर-सी बात है वह मज़दूरों के श्रम को केवल निचोड़कर उसके ख़ून-पसीने को सोने के सिक्कों में ढालना चाहते हैं। विकास की परियोजनाओं में मेहनतकशों के लिए कोई जगह नहीं है।

नोएडा का विस्तार

"नियोजित" नोएडा-ग्रेटर नोएडा के समानान्तर एक अनियोजित नोएडा-ग्रेटर नोएडा विकसित हो रहा है यहाँ वे लोग रहते हैं जो अपने श्रम से इस नियोजित नोएडा-ग्रेटर नोएडा को रौशन करते हैं। बुलन्दशहर और ग़ाज़ियाबाद ज़िलों के कुछ ग्रामीण व अर्द्धशहरी क्षेत्रों को काटकर 1997 को गौतमबुद्धनगर ज़िले का निर्माण किया गया। लगभग सवा सौ गाँवों में बसी औद्योगिक मज़दूरों-ग्रामीण मज़दूरों की लाखों की आबादी है जो हाशिये पर ढकेल दी गयी है। जिन गाँव वालों की ज़मीन अधिग्रहीत करके शहर का विकास किया गया है उन गाँवों में भी बेरोज़गारी तेज़ी से बढ़ गयी है।

भूमि अधिग्रहण के समय प्राधिकरण द्वारा गाँव वालों से किये गये वायदों को लेकर अक्सर टकराव की स्थिति पैदा होती रहती है। यह तथाकथित विकास गाँव वालों को भी रास नहीं आ रहा है। वे ख़ुद को ठगा महसूस करते हैं। नोएडा के केन्द्र में बसे कुछ गाँवों (हरौला, झण्डूपुरा, चौड़ा गाँव, गिझौर, ममूरा, बरोला, भंगेल) आदि में मज़दूरों की सघन आबादी रहती है।

सेक्टर 4, 5, 8, 9 तथा 10 की झुग्गियों में एक बड़ी मज़दूर आबादी रहती है। इसके अलावा हिण्डन नदी जो कि शहर के बीच से होकर गुज़रती है, उसके दोनों किनारों पर गाँवों से सटी अनधिकृत कॉलोनियों में मेहनतकशों की एक बड़ी आबादी रहती है। छिजारसी, चोटपुर, बहलोलपुर, सोरखा, फ़ेज़-2 औद्योगिक क्षेत्र से सटे गाँव इलहाबास, याकूबपुर, नयागाँव, नगला, ककराला, भूरा आदि वे सघन इलाक़े हैं जहाँ मज़दूर आबादी रहती है।

नोएडा को विस्तारित करते हुए 1991 में इसका एक हिस्सा ग्रेटर नोएडा के नाम से बसाया गया। ग्रेटर नोएडा में नॉलेज पार्क के नाम से शैक्षणिक संस्थानों के लिए अलग सेक्टर बसाये गये हैं, जहाँ पर लगभग 20 निजी विश्वविद्यालय व लगभग 300 कॉलेज व स्कूल हैं। हिण्डन उर्फ़ हरनन्दी नदी नोएडा व ग्रेटर नोएडा को विभाजित करती है। नोएडा से दादरी की तरफ़ जाते हुए भंगेल के बाद फ़ेज़-2 का औद्योगिक क्षेत्र शुरू होता है जो काफ़ी फैला हुआ है। यहाँ हौज़री कॉम्पलेक्स, नोएडा विशेष आर्थिक क्षेत्र के अलावा सेक्टर 80, 83, 84, 85, 86, 87, 88 का इलाक़ा है। यहाँ सैमसंग का एशिया का सबसे बड़ा उत्पादन केन्द्र है तो छोटी-छोटी औद्योगिक इकाइयाँ भी हैं। फ़ेज़-2 का औद्योगिक क्षेत्र ख़त्म होने के बाद हिण्डन नदी है जिसे पार करते ही ग्रेटर नोएडा शुरू हो जाता है जिसका पहला गाँव कुलेसरा है। कुलेसरा से दादरी के बीच ईको टेक-3 का औद्योगिक क्षेत्र, साइट बी और सी औद्योगिक क्षेत्र है। जिसमें मुख्यतः न्यू हॉलैण्ड, यामाहा, मिण्डा, डेंसो आदि बड़े औद्योगिक संयंत्र हैं। टॉय सिटी, महिला उद्यमी केन्द्र, उद्योग केन्द्र भी इसी इलाक़े में हैं। इन क्षेत्रों में काम करने वाली मज़दूर आबादी मुख्यतः कुलेसरा, हलदौनी, जलपुरा, हबीबपुर, सूतयाना, सूरजपुर, देवला और तिलपता गाँव में तथा इन गाँवों के साथ-साथ बसी अनधिकृत कॉलोनियों में रहती है।

कुलेसरा से दादरी की ओर जाते हुए बीच में सूरजपुर पड़ता है, जहाँ से एक रास्ता कासना की ओर जाता है जिसे आमतौर पर सूरजपुर-कासना रोड कहते हैं। सूरजपुर से कासना के बीच मुख्यतः ईकोटेक 1 व 2 और ईकोटेक एक्सटेंशन का औद्योगिक क्षेत्र पड़ता है जिसमें एलजी, मोज़रबियर, पेप्सिको, होण्डा सीएल, एशियन पेण्ट्स, ओप्पो, वीओ आदि के बड़े-बड़े प्लाण्ट हैं। सूरजपुर और कासना के बीच में सघन मज़दूर बस्तियाँ कम हैं। मुख्यतः सूरजपुर तथा कासना में बड़ी मज़दूर आबादी रहती है।

अनुपस्थित हैं मज़दूरों को संगठित करने वाली ताक़तें

नोएडा-ग्रेटर नोएडा में जिस रफ़्तार से गगनचुम्बी आवासीय परिसरों का निर्माण हो रहा है तथा जितनी बड़ी संख्या में मध्यवर्गीय व उच्च मध्य वर्गीय परिवार शिफ़्ट हो रहे हैं उनकी सुविधाओं एवं ज़रूरतों को पूरा करने के लिए उसी अनुपात में घरेलू कामगारों की एक बड़ी आबादी भी आ रही है। इनकी आबादी इन सोसायटियों के आस-पास रहती है। नोएडा में सदरपुर, छलेरा, हाज़ीपुर, बरोला, गेझा, शाहदरा गढ़ी, सोरखा, भंगेल, सलारपुर, असगरपुर आदि गाँवों में घरेलू कामगारों की बड़ी आबादी रहती है। जिन्हें किसी भी तरह के श्रम क़ानूनों की सुविधा नहीं प्राप्त है।

नोएडा-ग्रेटर नोएडा में कार्यरत लाखों मज़दूरों की आबादी जिस प्रकार का नारकीय जीवन बिता रही है, फ़ैक्टरियों में जिस प्रकार से श्रम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ायी जा रही हैं, आये दिन होने वाली औद्योगिक दुर्घटनाओं में रोज़ मज़दूरों की जिस प्रकार मौतें होती हैं, उसके मद्देनज़र मज़दूरों के प्रतिरोध को इन भयंकर अन्याय के विरुद्ध संगठित करने वाली ताक़तें अनुपस्थित हैं। मज़दूरों के अन्दर पल रहा ग़ुस्सा समय-समय पर दुर्घटनाओं के बाद स्वत:स्फूर्त और अराजक रूप से फूट पड़ता है जिसके बाद पुलिस प्रशासन का दमन भी मज़दूरों को झेलना पड़ता है और फिर मज़दूर बिखर जाते हैं। ज़ाहिर है, जब तक मज़दूरों के क्रान्तिकारी संगठनों व यूनियनों का निर्माण नहीं किया जाता है, तब तक ये स्वत:स्फूर्त विद्रोह फूटते रहेंगे और बिखरते रहेंगे, लेकिन संगठित और योजनाबद्ध तरीक़े से प्रतिरोध और आन्दोलन की रणनीतियाँ नहीं बन सकेंगी। नोएडा व ग्रेटर नोएडा के लाखों-लाख मज़दूरों के लिए एक ऐसे संगठन का निर्माण आज पहली ज़रूरत है। कहने को तो संशोधनवादी पार्टियों की धन्धेबाज़ ट्रेड यूनियनें कुछ इलाक़ों में सक्रिय हैं मगर यह मज़दूरों के हित में संघर्ष करने के बजाय मालिकों-मज़दूरों व प्रशासन के बीच बिचौलिये की भूमिका तक ही सीमित हैं। मज़दूरों को अपने बीच से क्रान्तिकारी संगठन व ताक़त विकसित करने के साथ ही धन्धेबाज़ ट्रेड यूनियनों के चरित्र को भी समझना होगा।

इस देश में ज़्यादातर काले क़ानूनों की जननी कांग्रेस सरकार यूएपीए का ख़तरनाक काला क़ानून लेकर आयी थी। फ़ासिस्ट मोदी सरकार ने अपने विरोधियों का मुँह बन्द करने के लिए इसके इस्तेमाल के सारे रिकॉर्ड तोड़ दिये हैं। मोदी सरकार आने के बाद साल-दर-साल यूएपीए लगाकर बन्द किये जाने वाले नागरिकों की संख्या बढ़ती जा रही है –

2014 – 2833 मामले	2018 – 5102 मामले
2015 – 3446 मामले	2019 – 5134 मामले
2016 – 3962 मामले	
2017 – 4451 मामले	(स्रोत : नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो)

गिनी में तख़्तापलट : निरंकुश सरकारों और सैन्य तानाशाहों के बीच लम्बे समय से पिस रही है अफ़्रीकी जनता

– सार्थक

पश्चिमी अफ़्रीका के देश गिनी में एक बार फिर तख़्तापलट हो गया है। 5 सितम्बर को 'गिनी विशेष बल' ने राष्ट्रपति अल्फ़ा कोण्डे को हिरासत में लेते हुए यह ऐलान किया कि देश की हुकूमत अब इनके हाथों में है और अब संविधान रद्द रहेगा। कर्नल मामाडी डौम्बौया, जिसके नेतृत्व में यह तख़्तापलट हुआ है, ने ख़ुद को गिनी का नया राष्ट्रपति घोषित कर दिया है। पिछले एक साल में पश्चिमी अफ़्रीका में यह चौथा सैन्य तख़्तापलट है। सिर्फ़ पश्चिमी अफ़्रीका ही नहीं बल्कि पूरा अफ़्रीकी महाद्वीप ही अपने उत्तर-औपनिवेशिक काल में भयंकर गृहयुद्धों, सैन्य तख़्तापलट और तानाशाह सत्ताओं से जूझता रहा है। 1950 के दशक के उत्तरार्द्ध से समूचे अफ़्रीकी महाद्वीप में दो सौ से ज़्यादा तख़्तापलट की कोशिशें हो चुकी हैं, जिनमें से सौ से ज़्यादा कोशिशें सफल भी रही हैं। गिनी में हुए तख़्तापलट को हम इसी जारी सिलसिले की एक कड़ी के तौर पर देख सकते हैं। हम कह सकते हैं कि गिनी में हुआ यह तख़्तापलट कोई अपवाद या आकस्मिक घटना नहीं बल्कि उत्तर-औपनिवेशिक अफ़्रीकी देशों की एक सामान्य परिघटना है। गिनी में जिन तात्कालिक परिस्थितियों में यह तख़्तापलट हुआ उसकी एक संक्षिप्त चर्चा करना यहाँ ज़रूरी है। साथ ही इसे गिनी के राजनीतिक इतिहास से जोड़ कर देखने की भी आवश्यकता है। इससे हमें गिनी और ज़्यादातर अफ़्रीकी देशों में चल रही राजनीतिक अस्थिरता और तख़्तापलटों के इतिहास को समझने की एक बेहतर पृष्ठभूमि मिलेगी।

अहमद सेकू तुरे के नेतृत्व में गिनी ने 1958 में फ़्रांसीसी साम्राज्य से आज़ादी हासिल की और तुरे आज़ाद गिनी के प्रथम राष्ट्रपति बने। पूँजीवादी विकास के लिए गिनी के समक्ष भी पूँजी और तकनॉलोजी की ज़रूरत की समस्या सामने थी। इसे पूरा करने के लिए तथाकथित 'तीसरी दुनिया' के ज़्यादातर नव-स्वतंत्र देशों की तरह ही गिनी की भी सोवियत संघ और अमेरिका पर निर्भरता बनी लेकिन इनके बीच की अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा का फ़ायदा उठाते हुए दोनों ही महाशक्तियों से मोलभाव करते हुए गिनी पूँजीवादी विकास के रास्ते पर आगे बढ़ा। लेकिन 1978 तक सेकू तुरे का सामाजिक साम्राज्यवादी सोवियत संघ से विलगाव हो गया और वह अमरीकी-फ़्रांसीसी ख़ेमे की गोद में जा बैठा। इस दौरान ही विश्व पूँजीवाद का आर्थिक संकट गहराने लगा जिसके काले बादल गिनी की अर्थव्यवस्था पर भी मँडराने लगे। इस गहराते आर्थिक संकट ने देश में सामाजिक-राजनीतिक असन्तोष को बढ़ावा दिया। सेकू तुरे का राज धीरे-धीरे एक निरंकुश राज में तब्दील होता जा रहा था और देश में हर प्रकार के राजनीतिक विरोध को बर्बरता से कुचला जा रहा था। 1950-60 के दशकों में अफ़्रीकी मुक्ति संघर्षों के एक सम्मानित नायक रहे सेकू तुरे का शासन 1980 के दशक के शुरू होने तक जनता के बीच एक अप्रिय हुकूमत में बदल जाता है।

इसी जन असन्तोष का फ़ायदा उठाकर 1984 में लानसाना कोन्ते ने पहला तख़्तापलट किया। यह ठीक सेकू तुरे की मृत्यु के एक दिन बाद हुआ। तख़्तापलट के बाद कोन्ते गिनी के दूसरे राष्ट्रपति बनते हैं। कोन्ते की सैन्य जुण्टा ने तख़्तापलट के बाद सेकू तुरे के निरंकुश शासन और मानवाधिकार उल्लंघन की जमकर निन्दा करनी शुरू की। तुरे के द्वारा बन्दी बनाये गये राजनीतिक क़ैदियों को रिहा कर दिया और देश में लोकतांत्रिक सुधार लाने का वायदा किया। लेकिन इन वायदों का प्रगतिशील मुखौटा लम्बे समय तक कोन्ते के असली चेहरे को छुपा नहीं सका और जल्द ही उसकी सैन्य निरंकुशता बेनक़ाब हो गयी। संविधान में संशोधन, चुनावों में धाँधली और रिगिंग और जनता का बर्बर दमन कर 2008 तक कोन्ते राष्ट्रपति बना रहा। 2008 में कोन्ते की मृत्यु के छह घण्टे के भीतर ही सेना प्रमुख दिआरा कामारा के नेतृत्व में सेना ने दूसरे तख़्तापलट की घोषणा कर दी। कामारा ने ख़ुद को नये सैन्य जुण्टा का अध्यक्ष घोषित किया और दो साल के अन्दर चुनाव करवाने व जनवादी सरकार के हाथों में देश की सत्ता सौंपने का वायदा किया। मगर जल्द ही गिनी की आम जनता को यह समझ आ गया कि कोन्ते की तरह किये वायदों के समान ही कामारा के वायदे भी सफ़ेद झूठ हैं। कामारा ने 2010 के चुनावों में धाँधली और रिगिंग कर सत्ता में बने रहने का निश्चय कर लिया था। 28 सितम्बर 2009 को गिनी में '28 सितम्बर स्टेडियम' में कामारा के इस्तीफ़े की माँग करते हुए राजधानी कोनाक्री में हज़ारो-हज़ार लोगों का जन सैलाब उमड़ पड़ा। प्रदर्शनकारियों पर सुरक्षा बलों ने जिस बर्बर तरीक़े से हमला किया और उनका नरसंहार किया उसे विश्व में उत्तर-औपनिवेशिक काल के बर्बरतम नरसंहारों में गिना जाता है। सुरक्षा बलों की अन्धाधुन्ध फ़ायरिंग के सामने देखते ही देखते हज़ारों लोगों के शवों का ढेर लग गया। महिलाओं को सुरक्षा बलों ने विशेष निशाना बनाया, बन्दूक़ की नोक पर सैकड़ों महिलाओं का बलात्कार किया गया और फिर उन्हें बेरहमी से मार दिया गया। वैसे संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट की माने तो क़त्लेआम में मात्र 157 लोगों की ही मृत्यु हुई है लेकिन वहाँ के लोगों और कई स्वतंत्र मानवाधिकार संस्थानों और पत्रिकाओं के अनुसार मरने वालों की संख्या कई हज़ार में है। इतना ही नहीं इस घटना के बाद सैन्य बलों का दमन कुछ दिन और चला। सत्ता में बैठे लोगों को अहसास होने लगा कि जनता का ग़ुस्सा एक बार फिर फूट पड़ेगा जो सिर्फ़ सैन्य जुण्टा के लिए ही ख़तरनाक नहीं होगा बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था के लिए ख़तरा उत्पन्न कर देगा। इसलिए कामारा को सुरक्षित विदेश भेज दिया गया और देश

(पेज 10 पर जारी)

बिहार के पंचायत चुनाव में 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' की भागीदारी

कोरोना महामारी के दौरान लगाये गये लॉकडाउन के कारण बिहार पंचायत चुनाव विलम्ब से करवाये गये। यह चुनाव कुल 11 चरणों में हो रहे हैं, इनमें कुछ चरण सम्पन्न हो चुके हैं, बचे हुए शेष चरण जारी हैं। बिहार पंचायत चुनाव अधिनियम 2006 के अनुसार दलगत आधार पर चुनाव नहीं होते। इसलिए बिहार पंचायत चुनाव में 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' की खुले रूप में भागीदारी नहीं थी बल्कि 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' के सदस्य ने इस चुनाव में अपनी व्यक्तिगत पहचान के तहत भागीदारी की। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी द्वारा बिहार राज्य के जहानाबाद ज़िले के हुलासगंज प्रखण्ड स्थित कोकरसा पंचायत के वार्ड संख्या 5 से ग्राम पंचायत सदस्य पद के लिए चुनाव लड़ा गया। वार्ड संख्या 5 के अन्तर्गत रुस्तमपुर गाँव के कुछ हिस्से तथा भत्तूविगहा गाँव के कुछ हिस्से हैं। इस क्षेत्र में रहने वाली ज़्यादातर आबादी खेतिहर मज़दूर एवं ग़रीब किसानों की आबादी है। इन ग़रीब किसानों के पास अपना कोई बड़ा खेत नहीं है। अधिकतर लोगों के पास मुश्किल से 4-6 कट्ठे हैं। इतनी ज़मीन से इनका जीवनयापन सम्भव नहीं है इसलिए ज़्यादातर लोग बग़ल के गाँव के धनी किसानों (ज़्यादा भूमिहार जाति या कुर्मी जाति) से बटाई या पट्टे पर ज़मीन लेते हैं। परन्तु पट्टे की ज़मीन पर भी खेती में पूँजी लगाने के लिए इनके पास पैसे नहीं होते और अक्सर ये धनी किसानों से ही ऋण लेते हैं। इन सबके बावजूद हाथ में नगद पैसा मुश्किल से बच पाता है, इसलिए आजीविका चलाने के लिए लोग बग़ल के शहरों में या राज्य के बाहर मज़दूरी करने जाते हैं। उनके घर की अर्थव्यवस्था चलाने में मज़दूरी करने का प्रमुख योगदान होता है और उनकी स्थिति अधिकांशत: अर्द्धसर्वहारा जैसी बन चुकी है। खेती के अलावा गाँव में ही कुछ सीज़नल काम मिल जाते हैं। इसके अलावा लोगों के पास इक्के-दुक्के मवेशी भी हैं। गाँव की बड़ी आबादी खेतिहर मज़दूर एवं ग़रीब किसानों की आबादी है। इस इलाक़े में लम्बे समय से भाकपा (माले) लिबरेशन का काम भी मौजूद रहा है। एक समय में ज़मीन्दारों के विरुद्ध किसानों के हथियारबन्द संघर्ष में इनकी भागीदारी रही थी। अपने जन्मकाल से ही विचारधारात्मक तौर पर अवसरवाद और संशोधनवाद की लाइन की पैरोकार भाकपा (माले) लिबरेशन का असली वर्ग चरित्र अब सबके सामने उजागर हो चुका है। गाँव के स्तर पर भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी की चुनावों में भागीदारी के दौरान इसी बात की पुष्टि हुई। लोग एक नयी पार्टी की ज़रूरत को समझ रहे थे जो सही मायने में ग़रीब किसानों व खेतिहर मज़दूरों के हितों की नुमाइन्दगी करे।

ज्ञात हो, इस इलाक़े में पहले से भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी का कोई आधार या काम नहीं था और कुछ ही माह पहले यहाँ उसका काम शुरू किया गया है। इसके बावजूद भी पार्टी ने पंचायत चुनाव में शिरकत की तथा बुर्जुआ तथा संशोधनवादी राजनीति के विकल्प के रूप में सर्वहारा-वर्गीय राजनीति को स्थापित करने का प्रयास किया। गाँव में मौजूद जातिवाद, परिवारवाद व धनबल-बाहुबल की राजनीति के समक्ष पार्टी ने सदस्य राधो विन्द (राहुल) को खड़ा करते हुए जनता से अपने वर्गीय हितों के आधार पर एकजुट होने का आह्वान किया। गाँव के लोगों के समक्ष पार्टी द्वारा किये जाने वाले संघर्ष के निम्नलिखित मुद्दे उठाये गये –

1) सभी को पक्का रोज़गार दिया जाये और रोज़गार नहीं मिलने की सूरत में 10,000 रुपये बेरोज़गारी भत्ता दिया जाये।

2) खेतिहर मज़दूरों के लिए भी न्यूनतम मज़दूरी, आठ घण्टे के कार्यदिवस, समूचे कार्य-अनुबन्ध के दौरान साप्ताहिक छुट्टी, सामाजिक सुरक्षा, आदि के प्रावधान लागू किये जायें।

3) ग़रीब से ग़रीब किसानों की संस्थागत ऋण (जो सस्ती ब्याज़ दर पर हो) तक पहुँच हो ताकि खेती में लगने वाली पूँजी के लिए वे धनी किसान से ऊँचे सूद पर क़र्ज़ लेने को मजबूर न रहें।

4) धनी वर्गों पर प्रगतिशील कर लगाकर ग़रीब किसानों को सरकारी माध्यम से उचित दर पर बीज, खाद, तकनीकी सहायता आदि प्रदान की जाये।

5) ग़रीब किसानों के अनाज पैक्स में ख़रीदे जायें! कई ग़रीब किसानों के खेत के काग़ज़ नहीं होने के कारण पैक्स के तहत सरकारी मदद उन्हें नहीं मिलती; यदि इसके लिए सरकार द्वारा ज़मीन के काग़ज़ बनवाना ज़रूरी है, तो वह किया जाये।

6) सरकारी योजना (वृद्धा/विधवा पेंशन, इन्दिरा आवास, मनरेगा आदि) में धाँधली न हो सके, इसके लिए पंचायत को मिलने वाले एक-एक पैसे का हिसाब जनता के सामने खोल कर रखा जाये।

7) वार्ड में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, विद्यालय, पुस्तकालय की व्यवस्था हो! हर जगह नल-जल तथा 24 घण्टे बिजली की व्यवस्था हो! गाँव की टूटी सड़कें बनवायी जायें और स्ट्रीट लाइट की व्यवस्था की जाये!

इन मुद्दों के आधार पर जनता से अपील की गयी कि जाति-धर्म-परिवारवाद की राजनीति से ऊपर उठकर और चन्द तात्कालिक फ़ायदों के लोभ-लालच से ऊपर उठकर आज वोट किया जाये। चुनाव में पार्टी द्वारा उठाये गये मुद्दों पर लोग सहमत थे। इसके साथ जनता के बीच व्यापक राजनीतिक प्रचार करते हुए उन्हें बताया गया कि व्यापक मेहनतकश आबादी को बेरोज़गारी, महँगाई, ग़रीबी व सामाजिक-आर्थिक असुरक्षा व अनिश्चितता से स्थायी रूप से मुक्ति एक मज़दूर इन्क़लाब तथा समाजवादी व्यवस्था की स्थापना से ही मिल सकती है। इसलिए लम्बी लड़ाई मज़दूरों की क्रान्तिकारी पार्टी को देशव्यापी पैमाने पर मज़बूती से खड़ा करने और नयी समाजवादी क्रान्ति की तैयारी करने की है। उसके बिना उपरोक्त मसलों पर जनता को कुछ राहत मिल भी जाये, तो पूँजीपति वर्ग अन्य रास्तों से उन राहतों को छीन लेने का रास्ता भी निकाल लेता है। जब तक उत्पादन, राज-काज और समाज के पूरे ढाँचे पर उत्पादन करने वाले वर्गों का हक़ नहीं होगा और फ़ैसला लेने की ताक़त वाक़ई उनके हाथों में नहीं होगी, तब तक आम मेहनतकश जनता के जीवन की समस्याओं का स्थायी समाधान सम्भव नहीं है। मौजूदा चुनावों में भागीदारी के पीछे भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी का एक लक्ष्य यदि तात्कालिक सुधारों व राहतों के लिए संघर्ष करना है, तो दूरगामी और बुनियादी लक्ष्य मेहनतकश जनता को एक क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए तैयार करना भी है।

एक स्तर तक जनता के बीच क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी का प्रचार व मज़दूर-वर्गीय राजनीति की अलग पहचान बनी लेकिन यह वोटों में तब्दील नहीं हो सकी। 600 की संख्या वाले वार्ड में कुल 506 वोट डाले गये। इसमें सबसे पहला स्थान भाकपा (माले) लिबरेशन समर्थित उम्मीदवार प्रमोद विन्द (103 वोट) को मिला। वार्ड में कुल 8 उम्मीदवार खड़े थे जिसमें से भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के उम्मीदवार राधो विन्द को कुल 53 वोट मिले। ये कुल वोटों के 10 प्रतिशत से अधिक था। यह वोट सिर्फ़ अपनी राजनीति के बल पर पार्टी के उम्मीदवार को प्राप्त हुए। इसके अलावा सभी उम्मीदवारों ने जाति-धर्म, धनबल-बाहुबल की राजनीति के आधार पर वोट प्राप्त किये। भाकपा (माले) लिबरेशन समर्थित उम्मीदवार भी इसका अपवाद नहीं था। हालाँकि तमाम तिकड़मों के बावजूद भाकपा (माले) लिबरेशन समर्थित उम्मीदवार के जीतने का एक बड़ा कारण यह भी था कि पार्टी के सारे वोट उसे मिले थे। बेशक आज गाँव में लोग भाकपा (माले) पार्टी के वर्ग चरित्र की सच्चाई को समझ चुके हैं लेकिन इसके बावजूद भी पार्टी को लोगों ने वोट किया। भाकपा (माले) लिबरेशन का इस क्षेत्र में लम्बे समय से आधार रहा है और अतीत के सशस्त्र व जुझारू संघर्षों की छाप अब भी जनमानस में जीवित है। गाँव स्तर पर भाकपा (माले) लिबरेशन के सदस्यों को दलाली व ठेकेदारी आदि के काम में संलग्न देखते हुए भी और इस संशोधनवादी पार्टी के वर्ग चरित्र को लाक्षणिक तौर पर समझते हुए भी लोगों ने इसके उम्मीदवार को जिताया। यह बताता है कि व्यापक जनसमुदायों के दीर्घकालिक, व्यापक और सघन क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार की आवश्यकता है। इस पूरी प्रक्रिया में भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी ने भाकपा (माले) पार्टी के संशोधनवादी चरित्र को भी बेनक़ाब किया लेकिन लोगों के बीच एक विकल्प के रूप में नहीं खड़ी हो सकी। गाँव की खेतिहर मज़दूर और ग़रीब किसानों की आबादी जनता की उस पिछड़ी चेतना वाली आबादी का हिस्सा है जो आम तौर पर शुरुआत में व्यवहार में ही समझ पाती है कि कौन-सी पार्टी किस वर्ग के हित में खड़ी है। गाँव में पहले से कोई लम्बा काम और आधार न होने के कारण ही भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी बुर्जुआ व संशोधनवादी पार्टियों के उम्मीदवार के समक्ष एक विकल्प के तौर पर नहीं उभर सकी।

लोगों के बीच भाकपा (माले) लिबरेशन की असलियत भले ही स्पष्ट हो चुकी है, किन्तु संशोधनवादियों की जड़ें उखाड़ फेंकने के लिए क्रान्तिकारी शक्तियों को ज़मीन पर अपना आधार खड़ा करना होगा। गाँव के स्तर पर ग़रीब किसानों व खेतिहर मज़दूरों को उनकी ठोस वर्गीय माँगों पर एकजुट करना होगा और साथ ही क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार कर उनकी वर्ग चेतना को राजनीतिक तौर पर उन्नत करना होगा। धनी किसान और कुलकों यानी ग्रामीण पूँजीपति वर्ग की नुमाइन्दगी करने वाली तमाम शक्तियाँ आज मज़बूती के साथ मैदान में खड़ी हैं किन्तु खेतिहर मज़दूरों एवं ग़रीब किसानों की नुमाइन्दगी करने वाली कोई क्रान्तिकारी ताक़त फ़िलहाल गाँवों में मौजूद नहीं है। इस चुनाव के अनुभव से यह साफ़ हुआ कि तमाम बुर्जुआ चुनावबाज़ पार्टियों तथा संशोधनवादी पार्टियों के बरक्स एक मज़बूत विकल्प के लिए पार्टी को ज़मीन पर काम खड़ा करना होगा। तभी गाँव के ग़रीबों के बीच भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी एक विकल्प बन सकती है।

– बिगुल संवाददाता

मौजूदा धनी किसान आन्दोलन का वर्ग चरित्र और उसकी हालिया अभिव्यक्तियाँ

– शिवानी

धनी किसान आन्दोलन को दिल्ली के बॉर्डरों पर शुरू हुए एक साल पूरा होने को है। इस एक साल के दौरान आन्दोलन के धनी किसान-कुलक वर्ग चरित्र को बेनक़ाब करती हुई कई घटनाएँ सामने आयी हैं। हाल में ही दिल्ली के सिंघु बॉर्डर पर धार्मिक कट्टरपन्थी निहंगों द्वारा एक दलित मज़दूर को बेरहमी से मार देने की घटना भी इसी वर्ग चरित्र को उजागर करने वाली एक प्रातिनिधिक घटना है। धार्मिक ग्रन्थ की कथित बेअदबी के नाम पर एक दलित मज़दूर को प्रदर्शन स्थल पर मार दिया जाता है और इसका कोई प्रतिकार तक नहीं होता है! उल्टे, इस आन्दोलन के नेतृत्व द्वारा ख़ुद को उक्त घटना से अलग करने के प्रयास तत्काल शुरू हो गये थे।

धनी किसान आन्दोलन के नेतृत्व ने हर बार की तरह आन्दोलन के वर्ग चरित्र को उजागर करने वाली इस बर्बर घटना को एक अकेली घटना और आन्दोलन के ख़िलाफ़ साज़िश के तौर पर प्रस्तुत किया और इससे अपना पल्ला झाड़ लिया। कुलकपरस्त ताक़तों ने इसके तर्क-पोषण के लिए तमाम कुतर्क गढ़े कि यह तो एक धार्मिक मसला है और किसान आन्दोलन का इससे कोई लेना-देना नहीं है या यह कि यह भाजपा की साज़िश थी। इसके जवाब में यही पूछा जा सकता है कि एक तथाकथित सेक्युलर आन्दोलन के भीतर धार्मिक कट्टरपन्थी ताक़तें या भी सिर्फ़ धार्मिक ताक़तें भी क्या कर रही थीं? क्या ऐसी ताक़तों की मौजूदगी और इनकी मौजूदगी के प्रति सहिष्णुता इस आन्दोलन के बारे में कुछ नहीं बताता है? विडम्बना देखिए कि "बेअदबी" के लिए उस मृत दलित मज़दूर के विरुद्ध मामला भी दर्ज किया गया!

इस घटना के बाद धनी किसान आन्दोलन के नेतृत्व ने दलित मज़दूर की हत्या पर "अफ़सोस" तो जताया था लेकिन साथ में यह भी जोड़ दिया था कि धार्मिक ग्रन्थ का अपमान करना ग़लत था! यह "धार्मिक भावनाओं के आहत होने" का तर्क वास्तव में सभी धर्मों के कट्टरपन्थी अपने जघन्यतम अपराधों को सही ठहराने के लिए ही करते हैं। क्या उक्त घटना अपने आप में नहीं दिखला देती है कि आन्दोलन को नैसर्गिक तौर पर किस प्रकार की ताक़तों का समर्थन प्राप्त है? इस प्रकार की बर्बर अमानवीय घटना पर निहायत ही अवसरवादी अवस्थिति अपनाना क्या दलित मज़दूरों के प्रति धनी किसान आन्दोलन के रवैये और मौजूदा आन्दोलन के वर्ग चरित्र के बारे में कुछ नहीं बताता है?

इस जघन्य हत्याकाण्ड को हुए अभी कुछ दिन भी नहीं गुज़रे थे कि एक अन्य घटना में फिर एक दलित मज़दूर के साथ एक निहंग ने प्रदर्शन स्थल के पास मारपीट की जिसके बाद उसे अस्पताल में भर्ती तक करने की नौबत आयी। इन दोनों घटनाओं के पीछे किसी "गहरी साज़िश" की खोजबीन करने के कोरस में तमाम कुलकपरस्त ताक़तें सुर मिलाने में शामिल हो गयीं। यहाँ यह कोई नहीं कह रहा है कि ये दोनों घटनाएँ कुलक आन्दोलन के नेतृत्व की शह पर हुईं या ऐसा करने में उनकी कोई सक्रिय भूमिका थी। लेकिन यह भी सच है कि ऐसी घटनाओं को अंजाम देने वाली फ़िरकापरस्त ताक़तों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में आन्दोलन के वर्ग चरित्र से नैसर्गिक तौर पर बल मिलता है और ये घटनाएँ इस आन्दोलन के वर्ग चरित्र से पैदा होने वाली नैसर्गिक अभिव्यक्तियाँ हैं।

यह आन्दोलन स्वतःस्फूर्त तरीक़े से बीच-बीच में ऐसी घटनाओं के ज़रिए अपना वर्ग चरित्र उजागर करता रहा है। हालाँकि धनी किसान आन्दोलन में सक्रिय तमाम राजनीतिक धाराएँ ऐसी घटनाओं पर अवसरवादी चुप्पी अख़्तियार किये हुए रहती हैं और इन्हें 'फ़्रिन्ज' तत्वों की कार्रवाई बताकर ख़ारिज करती रही हैं। संयुक्त किसान मोर्चा द्वारा आन्दोलन के भीतर मौजूद धार्मिक कट्टरपन्थी और धुर दक्षिणपन्थी ताक़तों की उपस्थिति पर दृढ़तापूर्वक स्टैण्ड लेकर उन्हें बाहर न करना और उनकी मौजूदगी के प्रति सहिष्णुता बनाये रखना इस आन्दोलन के नेतृत्व के चरित्र के विषय में काफ़ी कुछ बताता है।

इस बात को भी अभी ज़्यादा वक़्त नहीं हुआ है जब पंजाब के तमाम गाँवों में धनी किसान-कुलक अपनी पंचायतों में मत डालकर दलित मज़दूरों समेत खेतिहर मज़दूरों की मज़दूरी पर सीलिंग लगा रहे थे। यही नहीं, आन्दोलन में शामिल न होने वाले मज़दूर परिवारों, विशेषकर दलित मज़दूरों पर भारी जुर्माने लगाये जा रहे थे और उनका सामाजिक बहिष्कार तक किया जा रहा था। क्या यह अपने आप में यह साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि मौजूदा धनी किसान आन्दोलन किन वर्गों के हितों की नुमाइन्दगी कर रहा है?

पंजाब में धनी किसानों-कुलकों के वर्ग द्वारा खेतिहर मज़दूर वर्ग के ख़िलाफ़ शोषण और विशिष्ट तौर पर दलित खेतिहर मज़दूर आबादी के ख़िलाफ़ जातिगत उत्पीड़न व स्त्री मज़दूरों के विरुद्ध यौन हिंसा की घटनाएँ आम हैं। यहाँ पर ज़मीन के ज़्यादातर मालिक तथाकथित उच्च जातियों (जैसे कि जट्ट या जाट) से आते हैं जबकि ज़्यादातर खेतिहर मज़दूर दलित या प्रवासी हैं। धनी किसान दलित खेत मज़दूरों का न केवल आर्थिक शोषण करते हैं बल्कि उनका आर्थिकेतर उत्पीड़न व जातीय तौर पर सामाजिक उत्पीड़न भी करते हैं। खेत मज़दूरों के साथ मारपीट, महिला मज़दूरों के साथ यौन हिंसा और बलात्कार, मज़दूरों के बच्चों की छोटी-मोटी कथित चोरियों के नाम पर बुरी तरह से पिटाई जैसी घटनाएँ भी आम हैं। इन्हीं सब कारणों की वजह से पंजाब में दलित खेत मज़दूरों और उच्च जातीय खेत मालिकों के बीच का वर्ग संघर्ष जातीय संघर्षों के तौर पर भी अभिव्यक्त होता है।

अगर विशिष्ट तौर पर पंजाब की बात करें तो वहाँ दलित आबादी कुल आबादी का 31.94 प्रतिशत है; देश के किसी भी राज्य में यह अनुपात सबसे अधिक है। राज्य की आबादी में क़रीब एक तिहाई हिस्सा होने के बावजूद इनके पास पंजाब की कुल कृषि योग्य भूमि के मात्र 2.3 प्रतिशत का मालिकाना है। यह आबादी ज़्यादातर धनी किसानों कुलकों के खेतों-खलिहानों तथा अन्य आर्थिक इकाइयों में अपना उजरती श्रम बेचकर जीवन गुज़र-बसर करती है। पंजाब की कुल आबादी का तक़रीबन 25 प्रतिशत हिस्सा जट्ट सिक्खों का है। लेकिन पंजाब की क़रीब 80 प्रतिशत ज़मीन का मालिकाना इनके पास है। हालाँकि यह सच है कि जट्ट सिखों की एक विचारणीय आबादी छोटे और सीमान्त किसान के रूप में भी विद्यमान हैं, लेकिन उच्च मध्यम और बड़े पूँजीवादी किसान लगभग विशेष रूप से जट्ट सिख ही हैं। ज़ाहिरा तौर पर इनके बीच भी वर्ग अन्तरविरोध व्याप्त हैं और आबादी का एक हिस्सा उजरती श्रम करने को भी मजबूर है। राज्य की कुल 11 लाख जोतों में से केवल 63,480 (6.02 प्रतिशत) दलितों के पास हैं। पंजाब की कुल श्रमिक आबादी का 35.88 प्रतिशत हिस्सा अनुसूचित जाति से है। पंजाब में ग़रीबी रेखा से नीचे रहने वाले 5,23,000 परिवारों में से 3,21,000 या 61.4 प्रतिशत दलित हैं। यही कारण हैं कि दलित मज़दूर आबादी सबसे ग़रीब व अरक्षित आबादी है।

पूरे पंजाब में दलित उत्पीड़न का एक बर्बर इतिहास रहा है। पंजाब में आम तौर पर दलित आबादी का आर्थिक शोषण तथा आर्थिकेतर उत्पीड़न करने का काम कुलक-धनी किसान वर्ग करता है, जिसका राजनीतिक प्रतिनिधित्व शिरोमणि अकाली दल जैसी पार्टी करती है। इसलिए सिंघू बॉर्डर पर हुई घटना को भी एक वृहद् परिप्रेक्ष्य में देखने की आवश्यकता है जो कि स्पष्ट तौर पर दिखलाती है कि यह कोई अकेली घटना नहीं है, जैसा कि कुलकपरस्त ताक़तों का दावा था, बल्कि एक सामान्य रुझान को रेखांकित करने वाली घटना है।

"मज़दूर-किसान एकता" के नारे की हक़ीक़त वैसे तो हर साल ही पंजाब-हरियाणा-पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गाँवों में खुलकर सामने आती है; लेकिन इस आन्दोलन के दौरान भी इन दावों की कलई कई बार खुलती रही है। आज जब धनी किसानों-कुलकों के वर्ग को उससे भी बड़ी पूँजी बाज़ार के खेल में पछाड़ रही है तो इस वर्ग को मज़दूरों के समर्थन की याद आ रही है! यही नहीं इन धनी किसानों की पंचायतों की मज़दूरी पर सीलिंग फ़िक्स करने से जुड़े हुए उपरोक्त फ़रमान ठीक उस समय आये थे जब राजधानी दिल्ली की सीमाओं पर जारी किसान आन्दोलन में "किसान-मज़दूर एकता" के नारे उछाले जा रहे थे। मज़दूर वर्ग को समझाया जा रहा है कि अपने वर्ग हित भुलाकर साझा दुश्मन, यानी कि, बड़ी पूँजी के ख़िलाफ़ संघर्ष में वह अपने वर्तमान शोषकों, यानी कि, धनी किसानों-कुलकों के वर्ग का साथ दे, क्योंकि इस वक़्त छोटी पूँजी बड़ी पूँजी के आगमन से भयाक्रांत है! कुछ "यथार्थवादी" मूर्ख भी कुलकों-धनी किसानों द्वारा खेतिहर मज़दूरों के शोषण को अतीत की बात क़रार दे रहे थे! लेकिन इस "एकता" की असलियत तो इस आन्दोलन के वर्ग चरित्र को बेनक़ाब करने वाली ये तमाम घटनाएँ ख़ुद-ब-ख़ुद बयान कर रही हैं।

धनी किसान-कुलक वर्ग के नये "सिद्धान्तकारों" के रूप में में ख़ुद को स्थापित करने के लिए बेताब "यथार्थवादी" कुलकपरस्त गिरोह ('यथार्थ' पत्रिका निकालने वाली मूर्ख-मण्डली) हो या पंजाब के ट्रॉट-बुण्डवादी "मार्क्सवादी" (प्रतिबद्ध पत्रिका से जुड़ा हुआ ग्रुप), ये सभी वास्तव में मज़दूर वर्ग को गाँव में अपने प्रमुख शोषक और उत्पीड़क वर्ग का पिछलग्गू बनने की नसीहत दे रहे हैं, उन्हें अपने वर्ग हितों के विपरीत जाकर धनी किसानों-कुलकों के वर्ग हितों की हिफ़ाज़त करने का पाठ पढ़ा रहे हैं। "मौजूदा वक़्त की दरकार" की रामनामी माला जपते हुए पर आज राकेश टिकैत-नरेश टिकैत जैसे घोर जातिवादी, साम्प्रदायिक व धुर-दक्षिणपन्थी तत्व इन "मार्क्सवादियों" के वर्ग मित्र बन चुके हैं!

राकेश टिकैत, नरेश टिकैत जैसे तत्वों की जन्मकुण्डली उठाकर देखी जाये तो हिन्दुत्ववादी फ़ासीवाद से लेकर हर प्रकार के प्रतिक्रियावाद से इनकी नज़दीकी और गलबहियाँ स्वतः स्पष्ट हो जाती हैं। मुसलमानों के ख़िलाफ़ हुए मुज़फ़्फ़रनगर दंगों और हत्याकाण्ड में इनकी भूमिका भी जगज़ाहिर है। भारतीय किसान यूनियन और भाजपा दोनों ने ही मिलकर 7 सितम्बर, 2013 को उस महापंचायत का आयोजन किया था जिसके बाद मुसलमानों के ख़िलाफ़ फ़ासीवादी हमले और क़त्लेआम की शुरुआत हुई थी। तमाम भाजपा नेताओं के साथ ही दोनों भाइयों का नाम उस वक़्त दर्ज हुई एफ़आईआर में शामिल है। लेकिन आज यही राकेश टिकैत कुलकपरस्त ताक़तों को "क्रान्तिकारी" नज़र आ रहा है! यह भी अनायास नहीं है कि लखीमपुर खीरी में किसानों पर हुए बर्बर फ़ासीवादी हमले के बाद राकेश टिकैत संयुक्त किसान मोर्चा के प्रतिनिधि के तौर पर सरकारी अधिकारियों के साथ 'सौदेबाज़ी' कर रहा था। इतनी बड़ी घटना के 24 घण्टे के भीतर ही किसान कैसे पीछे हट गये और 25,000 लोगों की भीड़ इतने कम समय में कैसे छँट गयी, ये तमाम प्रश्न भी राकेश टिकैत जैसे धुर-दक्षिणपन्थी तत्व की भूमिका पर सवालिया निशान खड़ा करती है। क्या यह अपने आप में धनी किसान आन्दोलन की मौक़ापरस्ती को नहीं दिखला देता है, जो ऐसे तत्वों को सरकार से "मांडवली" करने के लिए आगे करती है?

स्पष्ट है कि ये तमाम घटनाएँ अलहदा या इकलौती घटनाएँ नहीं हैं बल्कि धनी किसान-कुलक आन्दोलन के वर्ग चरित्र को उजागर करने वाली प्रातिनिधिक घटनाएँ हैं। इस आन्दोलन में नरोदवादी या अन्य वामपन्थी संगठनों की मौजूदगी से इस आन्दोलन का चरित्र बदल नहीं जाता है। वैसे भी इन तमाम संगठनों व ग्रुपों ने आन्दोलन के समक्ष उपस्थित हर अहम विचारधारात्मक-राजनीतिक मसले पर समझौते कर घुटने ही टेके हैं।

हरियाणा में बेरोज़गारी के भयंकर होते हालात!

(पेज 3 से आगे)

'जीने का अधिकार' सुनिश्चित होता है। 'मनरेगा' में सरकार ने पहली बार माना था कि रोज़गार की गारण्टी देना उसकी ज़िम्मेदारी है किन्तु यह योजना भी भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ गयी। न केवल ग्रामीण और न केवल 100 दिन बल्कि हरेक के लिए उचित जीवनयापन योग्य पक्के रोज़गार के प्रबन्ध की ज़िम्मेदारी भारतीय राज्य व सरकारों की बनती है। सभी को रोज़गार देने के लिए तीन चीज़ें चाहिए (1) काम करने योग्य हाथ (2) विकास की सम्भावनाएँ (3) प्राकृतिक संसाधन। क्या हमारे यहाँ इन तीनों चीज़ों की कमी है? जी, नहीं! क़त्तई नहीं! तो सवाल सरकारों की नीयत पर उठता है। पूँजीपरस्त और जनविरोधी नीतियों को लागू करने में कांग्रेस-भाजपा से लेकर तमाम रंगों-झण्डों वाले चुनावी दल एकमत हैं!

वैसे तो पूँजीवादी व्यवस्था के ख़ात्मे के साथ ही बेरोज़गारी के संकट को पूरी तरह से हल किया जा सकता है। किन्तु पूँजीवादी व्यवस्था के रहते हुए भी बिना एकजुटता और सही दिशा में संघर्ष के हम वह भी हासिल नहीं कर पाते जोकि इसी व्यवस्था के रहते हुए भी हासिल किया जा सकता है। जहाँ तक हरियाणा में रोज़गार के मसले पर जनान्दोलन की बात है तो फ़िलहाल स्थिति काफ़ी निराशाजनक है।

हरियाणा में ट्रेड यूनियन आन्दोलन लम्बे समय से ही और कहा जाये तो शुरू से ही जुझारू अर्थवाद और समझौतापरस्ती का शिकार रहा है। नकली लाल झण्डे वाली संशोधनवादी और संसदीय वामपन्थी पार्टी माकपा के कर्मचारी संघ का ही यहाँ कर्मचारियों के बीच ज़्यादा दबदबा है। इसका काम मज़दूरों-कर्मचारियों को राजनीतिक तौर पर शिक्षित-प्रशिक्षित करने की बजाय उन्हें अर्थवाद के गोल घेरे में घुमाते जाना ही रहा है। बेहद जुझारू और क़ुरबानी भरे संघर्षों के बावजूद भी कर्मचारी अपना अस्तित्व तक बचा पाने में नाकाम साबित हो रहे हैं। ज़्यादातर भर्तियों को ठेकेदारी प्रथा के तहत लाकर सरकारी महकमों को लगातार बर्बाद किया जा रहा है। छात्र-युवा आन्दोलन भी फ़िलहाल बिखराव और ठहराव का ही शिकार है। निश्चय ही भविष्य में सही कार्यदिशा के आधार पर मज़दूरों-कर्मचारियों और छात्रों-युवाओं को नये सिरे से अपने संघर्ष संगठित करने होंगे। व्यापक एकजुटता और संघर्ष की सही कार्यदिशा के दम पर ही हम खट्टर-दुष्यन्त ही नहीं बल्कि किसी भी सरकार को झुका सकते हैं और अपने रोज़गार ही नहीं बल्कि अपने तमाम हक़-अधिकार हासिल कर सकते हैं।

महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की 104वीं वर्षगाँठ के अवसर पर

(पेज 1 से आगे)

से समाप्त भी नहीं हुआ था, हालाँकि पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्ध खेती में अब प्रमुख रुझान बन चुके थे। बहरहाल, तात्कालिक तौर पर रूसी क्रान्ति खेती के क्षेत्र में समाजवादी सम्पत्ति सम्बन्धों को क़ायम नहीं कर सकी, क्योंकि लेनिन के शब्दों में, समाजवाद सरकारी आदेशों और आज्ञप्तियों से नहीं लाया जा सकता है और व्यापक किसान आबादी तत्काल साझी खेती यानी समाजवादी खेती के लिए तैयार नहीं थी। रूस में किसान आबादी कुल आबादी का क़रीब 85 फ़ीसदी थी और उसमें भी मँझोले व ग़रीब किसानों की बहुसंख्या थी। ऐसे में, समाजवादी मज़दूर सत्ता ने एक लम्बी प्रक्रिया में व्यापक मेहनतकश किसान आबादी को मिसाल पेश करके और समझा-बुझा कर साझी खेती पर लाने का फ़ैसला किया। यह कार्य 1936 में स्तालिन के नेतृत्व में पूरा हुआ।

क्रान्ति के तुरन्त बाद ही देश के भीतर एक भयंकर गृहयुद्ध शुरू हो गया। ज़ाहिर है कि जब लुटेरों के हाथ से सत्ता छीन ली जाती है, तो वे चुपचाप नहीं बैठते बल्कि अपनी सत्ता को फिर से हासिल करने के लिए हमले, तोड़-फोड़, साज़िश और विदेशी साम्राज्यवादी-पूँजीवादी ताक़तों की मदद लेने से भी बाज़ नहीं आते। रूस के पूँजीपतियों और भूस्वामियों ने भी अपने खोये हुए स्वर्ग को हासिल करने के लिए 14 साम्राज्यवादी देशों की मदद से रूस की नवजात मज़दूर सत्ता के विरुद्ध एक युद्ध छेड़ दिया। यह गृहयुद्ध मई 1918 से शुरू होकर 1921 के अन्त तक चलता रहा। इसमें रूस के मज़दूर वर्ग और ग़रीब किसान आबादी ने अद्वितीय क़ुरबानी देकर मालिकों, ज़मीन्दारों, व्यापारियों और विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियों की ताक़त को शिकस्त दी। लेकिन पहले विश्वयुद्ध से पहले से ही तबाह और अकाल और भुखमरी झेल रहे समाजवादी रूस को इसके लिए बहुत नुक़सान भी उठाना पड़ा। आर्थिक तौर पर जो नुक़सान हुआ, उसकी भरपाई करना भी मुश्किल था, लेकिन असली चुनौती राजनीतिक थी।

गृहयुद्ध के दौरान मोर्चे पर सैनिकों और लड़ाई की ज़रूरत के अनुसार पूरी अर्थव्यवस्था और विशेष तौर पर खेती को निचोड़ना पड़ा, क्योंकि उसके बिना मज़दूर सत्ता और समाजवाद को बचाना सम्भव नहीं था। इसी बीच जो धनी किसान और उच्च मध्यम किसान थे, वे मज़दूरों और सैनिकों को अनाज सहज रूप से मुहैया कराने की बजाय अनाज की जमाख़ोरी और कालाबाज़ारी करने में लगे हुए थे। लिहाज़ा, लेनिन के आह्वान पर ग़रीब किसानों ने अपनी समितियाँ बनायीं और धनी किसानों और कुलकों से अनाज ज़ब्त करने लगे। लेकिन युद्ध की स्थितियों में ग़रीब किसान कमेटियों के निशाने पर अक्सर मँझोले किसान भी आने लगे। इसके कारण गृहयुद्ध के दौरान ही गाँवों में बोल्शेविकों व मज़दूर सत्ता के सामाजिक आधार पर ही एक ख़तरा मण्डराने लगा। इसी बीच बोल्शेविक पार्टी में भी एक अगिया बैताल "वामपन्थी" भटकाव भी पैदा हुआ, जिसकी नुमाइन्दगी बुखारिन, त्रॉत्स्की और प्रियोब्रेझेंस्की जैसे नेता कर रहे थे। इनका मानना था कि समाजवादी व्यवस्था को चन्द वर्षों में भी पुख़्ता तौर पर स्थापित किया जा सकता है और इसके लिए पार्टी और मज़दूर राज्यसत्ता को ऊपर से समाजवादी रूपान्तरण को व्यापक जनता पर लाद देना चाहिए। लेनिन ने इसका विरोध किया और बताया कि समाजवादी सम्पत्ति सम्बन्धों व उत्पादन सम्बन्धों की स्थापना का काम, मुद्रा की भूमिका को समाप्त करने का काम, मज़दूरों को कल-कारख़ानों व खानों-खदानों का प्रबन्धन सिखाने का काम, सामूहिक फ़ार्मों की स्थापना का काम स्वयं एक वर्ग संघर्ष की प्रक्रिया है और यह विशेष तौर पर रूस जैसे पिछड़े पूँजीवादी देश में कई चरणों से होकर ही गुज़र सकती है। यह कार्य राजनीतिक तौर पर व्यापक जनता में सर्वहारा वर्ग के राजनीतिक व विचारधारात्मक नेतृत्व को स्थापित करके ही हो सकता है। गृहयुद्ध की स्थितियों ने पार्टी और मज़दूर सत्ता को यह काम नहीं करने दिया और उन्हें बाध्यतावश मज़दूर सत्ता की रक्षा के लिए न सिर्फ़ मँझोले किसानों पर बल्कि मज़दूर वर्ग के एक हिस्से को भी कुछ ऐसे क़दमों को उठाने के लिए बाध्य करना पड़ा, जो क़दम लम्बी दूरी में व्यापक जनता को राजनीतिक व विचारधारात्मक तौर पर तैयार करके ही उठाये जा सकते थे। "वामपन्थी" भटकाव से ग्रस्त धड़ा इन बाध्यतापूर्ण क़दमों को ही कम्युनिज़्म ऊपर से ला देने का रास्ता बता रहा था, जिसका लेनिन ने विरोध किया।

इसलिए गृहयुद्ध ख़त्म होने के बाद लेनिन ने टूटते हुए मज़दूर-किसान संश्रय को बचाने के लिए नयी आर्थिक नीतियों का प्रस्ताव रखा, जिसके अनुसार, आर्थिक बर्बादी और अकाल से निपटने के लिए तात्कालिक तौर पर पूँजीवादी व निम्न-पूँजीवादी तत्वों को नियंत्रित तौर पर और सर्वहारा वर्ग की तानाशाही की चौकसी के अन्तर्गत कुछ छूट देने का रास्ता अपनाया गया। इसमें धनी व उच्च मध्यम किसान आबादी से ज़बरन फ़सल वसूली रोककर एक निर्धारित फ़सल कर लगाया गया, जिसे मज़दूर सत्ता को देने के बाद किसान अपनी बेशी फ़सल को खुले बाज़ार में बेच सकते थे। इसी के पूरक के तौर पर समाजवादी उद्योगों को भी बाज़ार में मुक्त विनिमय की छूट देनी पड़ी। निश्चित तौर पर इससे कालान्तर में पूँजीवादी तत्व पैदा होते। लेकिन लेनिन ने स्पष्ट किया कि यह एक अस्थायी रूप से पीछे हटाया गया रणनीतिक क़दम है, न कि समाजवादी निर्माण की आम नीति। लेकिन अभी मज़दूर सत्ता को मज़दूर-किसान संश्रय को बचाकर ही बचाया जा सकता है और साथ ही देश को आर्थिक बर्बादी और पतन से बचाने के लिए भी यह ज़रूरी है। लेनिन की यह नीति स्वीकार की गयी। नयी आर्थिक नीतियों के लागू होने के एक वर्ष के भीतर ही आर्थिक तौर पर स्थिति सुधरने लगी और मँझोले किसानों से टूट रहे संश्रय को दुरुस्त करने में भी मज़दूर सत्ता कामयाब रही। इसका नकारात्मक यह था कि नये धनी किसानों व कुलकों का एक वर्ग पैदा होने लगा और साथ ही व्यापारियों व बिचौलियों का भी एक वर्ग पैदा होने लगा, जो समाजवाद का विरोधी था और मज़दूर वर्ग की सत्ता का खुले व छिपे तरीक़े से प्रतिरोध करता था।

पार्टी के भीतर भी बुखारिन जैसे लोग इन धनी किसानों का समर्थन करने की बात कहने लगे क्योंकि उन्हें लगता था कि उत्पादक शक्तियों का तेज़ विकास करने के लिए धनी किसानों को और धनी बनने का नारा दिया जाना चाहिए। यह पार्टी के भीतर समाज में जारी वर्ग संघर्ष की ही अभिव्यक्ति थी। पार्टी और राज्यसत्ता के भीतर ही 'किसी भी क़ीमत पर' आर्थिक विकास और उत्पादक शक्तियों के विकास की ख़तरनाक पूँजीवादी सोच जड़ जमाने लगी थी। धनी किसानों-कुलकों व कालाबाज़ारी करने वाले व्यापारियों का एक पूरा वर्ग समाज में मज़बूत हो रहा था। 1926-27 से ही इसने मज़दूर सत्ता की अवहेलना करना, जमाख़ोरी और कालाबाज़ारी करके मुनाफ़ाख़ोरी करना और कृत्रिम अकाल पैदा करने की नीति अपनानी शुरू कर दी थी। 1928-29 तक धनी किसानों-कुलकों के इस वर्गीय प्रतिरोध के कारण मज़दूर सत्ता के लिए एक बार फिर से गम्भीर स्थिति पैदा हो गयी थी।

1924 में लेनिन की मृत्यु हो चुकी थी और उसके बाद सोवियत यूनियन में सर्वहारा सत्ता और बोल्शेविक पार्टी को नेतृत्व देने का काम मुख्य रूप से स्तालिन कर रहे थे। स्तालिन ने 1929 में धनी किसानों-कुलकों के इस प्रतिरोध से निपटने के लिए पहले ज़बरन फ़सल वसूली के आपात क़दम उठाये। लेकिन यह स्पष्ट हो चुका था कि अब खेती में समाजवादी सम्पत्ति सम्बन्धों की स्थापना करने का काम किये बिना, यानी निजी खेती के स्थान पर सामूहिक या साझी खेती के रूपों की स्थापना किये बग़ैर संकट से निपटना मुश्किल था। इसलिए 1930-31 में स्तालिन के नेतृत्व में बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में सर्वहारा वर्ग ने ग़रीब और मँझोले किसानों को साथ लेकर गाँवों में खेती के सामूहिकीकरण का एक पूरा आन्दोलन शुरू किया गया। यह समाजवाद में जारी वर्ग संघर्ष ही था। 1936 में सामूहिकीकरण समाप्त हुआ और धनी किसानों व कुलकों को एक वर्ग के तौर पर ख़त्म कर दिया गया। इसके साथ स्तालिन के नेतृत्व में सोवियत समाजवाद एक और क़दम आगे गया और उद्योगों के बाद खेती के क्षेत्र में भी समाजवादी सम्पत्ति सम्बन्धों की स्थापना के काम को पूरा किया गया।

इस समय तक सोवियत संघ में बेरोज़गारी, ग़रीबी, भुखमरी, दरिद्रता, वेश्यावृत्ति की पूरी तरह से समाप्ति की जा चुकी थी। मज़दूरों और सामूहिक किसानों का जीवन स्तर कई गुना ऊपर उठ चुका था। साक्षरता दर 10 प्रतिशत से 80 प्रतिशत पहुँच चुकी थी, देश में सम्पूर्ण विद्युतीकरण का काम पूरा हो चुका था, स्त्रियों के जीवन में भारी परिवर्तन आया था क्योंकि सामूहिक भोजनालयों और शिशु पालना घरों ने उन्हें रसोई और बच्चों के पालन-पोषण तक सीमित रहने से मुक्त करना शुरू कर दिया था, औद्योगिक विकास की दर अद्भुत रूप से ऊँची थी, जिस पर कभी कोई पूँजीवादी देश नहीं पहुँच पाया था। इन उपलब्धियों के अलावा, सोवियत यूनियन ने ज़ारशाही के दौर के रूस द्वारा दमित तमाम क़ौमों को आज़ादी थी और पहले उनके साथ एक संघ का निर्माण किया क्योंकि ये दमित क़ौम सोवियत रूस के साथ एक संघ में ही शामिल होना चाहते थे और आगे चलकर सोवियत यूनियन का निर्माण किया। शुरू में सोवियत यूनियन में मौजूद संघीय ढाँचा भी बाद में वास्तव में समाप्त हो गया और कई राष्ट्रों को अपने अन्दर समेटे एक ऐसे समाजवादी देश का निर्माण हुआ जिसमें सभी क़ौमों और राष्ट्रीयताओं को समानता का स्थान प्राप्त था और सभी भाषाओं को पूर्ण बराबरी हासिल थी।

सोवियत संघ में समाजवादी प्रयोग महान उपलब्धियों के 36 वर्षों के बाद क्यों गिरा?

सोवियत संघ की इन आर्थिक और राजनीतिक उपलब्धियों के बावजूद यह सवाल आपके दिमाग़ में उठ सकता है कि 1953 में स्तालिन की मृत्यु के बाद समाजवादी व्यवस्था का पतन क्यों हो गया, रूसी पार्टी कम्युनिस्ट पार्टी से एक संशोधनवादी पूँजीवादी पार्टी में क्यों तब्दील हो गयी? यह एकदम नैसर्गिक और जायज़ सवाल है और इसका जवाब दिये बग़ैर नयी समाजवादी क्रान्ति को अंजाम देना और पूँजीवादी व्यवस्था का ध्वंस करना सम्भव नहीं है।

सोवियत यूनियन में समाजवादी व्यवस्था के पतन और पूँजीवादी पुनर्स्थापना के कई वस्तुगत और मनोगत कारक थे। पहला, बुनियादी वस्तुगत कारक यह था कि रूस में एक बेहद विशिष्ट स्थिति में एक नवोदित और छोटे लेकिन राजनीतिक रूप से उन्नत और संगठित मज़दूर वर्ग ने समाजवादी क्रान्ति को अंजाम दिया था और इससे पहले समाजवादी प्रयोग की कोई मिसाल उसके सामने मौजूद नहीं थी। आम तौर पर, किसी भी वर्ग की राज्यसत्ता के पहले प्रयोग सफल नहीं होते। पूँजीपति वर्ग भी सामन्तवाद से चार सौ साल के बाद जीत पाया, जिस दौरान उसने कई क्रान्तियाँ भी कीं और कई हारें भी देखीं। इसमें कोई ताज्जुब की बात नहीं है कि सर्वहारा वर्ग के प्रथम दौर के प्रयोग भी महान उपलब्धियों को हासिल करने के बाद गिर गये।

दूसरा वस्तुगत कारक यह था कि रूस में बेहद अपवादस्वरूप स्थितियों में नवम्बर 1917 में समाजवादी क्रान्ति हुई। लेनिन ने ख़ुद ही बताया था कि दो अपवादस्वरूप स्थितियों के कारण रूस में नवम्बर 1917 में समाजवादी क्रान्ति हो सकी। पहला कारण था प्रथम विश्वयुद्ध द्वारा पैदा आर्थिक बर्बादी, अकाल और भुखमरी की स्थिति और इस युद्ध में बड़े पैमाने पर रूसी सैनिकों का क़त्लेआम (जो मुख्यत: और मूलत: किसान और मज़दूर ही थे)। इसके कारण देश में भयंकर विद्रोह का माहौल पैदा हुआ, जिसने पहले स्वत:स्फूर्त रूप से फ़रवरी 1917 की जनवादी क्रान्ति को जन्म दिया और फिर बोल्शेविक पार्टी के सचेतन राजनीतिक नेतृत्व में नवम्बर 1917 की समाजवादी क्रान्ति को। दूसरा कारण था, क्रान्ति के पहले जनपंचायत जैसी संस्था सोवियत का फिर से एक नये रूप में जाग उठना, जो कि पहली बार 1905 की असफल रूसी क्रान्ति के दौरान अस्तित्व में आयीं थीं। साथ ही, मज़दूरों का कारख़ाना समिति आन्दोलन और मेहनतकश किसानों का भूमि समिति आन्दोलन, फ़रवरी 1917 के बाद आयी आरज़ी पूँजीवादी सरकार की जड़ें खोद रहे थे और दूसरी ओर समानान्तर सोवियत सत्ता को बल प्रदान कर रहे थे। इन दो वस्तुगत कारकों के अलावा एक महत्वपूर्ण मनोगत कारक भी था: बोल्शेविक पार्टी के रूप में दुनिया की सबसे उन्नत कम्युनिस्ट पार्टी का मौजूद होना और उसके नेतृत्व में रूस के नवोदित और छोटे लेकिन राजनीतिक रूप से उन्नत मज़दूर वर्ग का मज़बूती से गोलबन्द और संगठित होना। इन कारकों के मिलने से एक क्रान्तिकारी परिस्थिति पैदा हो गयी थी: यानी, एक ओर आर्थिक संकट और युद्ध ने पूँजीपति वर्ग से एक राजनीतिक वर्ग के रूप में शासन करने की क्षमता को छीन लिया था और उनकी आपसी राजनीतिक सहमति बिखर गयी थी और वहीं दूसरी ओर बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में मज़दूर वर्ग सत्ता पर क़ब्ज़ा करने में सक्षम था।

उपरोक्त वस्तुगत कारकों ने बेहद विशिष्ट सन्धि-बिन्दु, यानी कई आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक अन्तरविरोधों के मिल जाने से पैदा हुए राजनीतिक संकट, में रूसी समाजवादी क्रान्ति को सम्भव बनाया। लेकिन ठीक इन्हीं वजहों से रूस में समाजवादी क्रान्ति की समस्याएँ भी पैदा हुईं। एक कमज़ोर और नवोदित बुर्जुआ सत्ता को विशिष्ट स्थितियों में उखाड़ फेंकना आसान था, लेकिन एक बेहद पिछड़े पूँजीवादी देश में, जिसमें कि 85 प्रतिशत आबादी किसानों की थी, समाजवादी व्यवस्था का निर्माण करना और उस प्रक्रिया में जारी वर्ग संघर्ष को सही ढंग से संचालित करना बोल्शेविक पार्टी के समक्ष बेहद जटिल और मुश्किल सवालों को खड़ा करता था। एक ओर व्यापक मेहनतकश किसान आबादी के साथ मज़दूर वर्ग के संश्रय को बरक़रार रखना सर्वहारा सत्ता के अस्तित्व को बचाये रखने के लिए अनिवार्य था, वहीं उद्योग और खेती समेत समूची अर्थव्यवस्था में समाजवादी उत्पादन सम्बन्धों की स्थापना की शुरुआत करना और उत्पादक शक्तियों का विकास करना भी आवश्यक था, जिसके बिना सोवियत समाजवाद के अस्तित्व को क़ायम रख पाना मुश्किल था। दूसरे शब्दों में, रूस की विशिष्ट परिस्थितियों में पूँजीपति वर्ग की राज्यसत्ता का ध्वंस कर क्रान्ति करना अपेक्षाकृत आसान था लेकिन समाजवादी मज़दूर सत्ता को टिका पाना और समाजवादी निर्माण के कार्य को आगे बढ़ाना ज़्यादा मुश्किल। साथ ही, लेनिन, स्तालिन और समूची बोल्शेविक पार्टी के पास समाजवादी प्रयोगों की कोई मिसाल मौजूद नहीं थी, जिसके अनुभवों से सीखकर इन समस्याओं का हल करने में उन्हें कोई मदद मिलती।

नतीजतन, ग़लतियाँ होना लाज़िमी था। इसका यह मतलब नहीं कि सोवियत समाजवाद का पतन अवश्यम्भावी था। इस प्रकार का नियतिवाद अवैज्ञानिक और मूर्खतापूर्ण होगा। इसका यह अर्थ है

(पेज 9 पर जारी)

फिर लोहे के गीत हमें गाने होंगे दुर्गम यात्राओं पर चलने के संकल्प जगाने होंगे

(पेज 8 से आगे)

कि वस्तुगत रूप से प्रतिकूल ऐतिहासिक परिस्थितियों में मनोगत तौर पर ग़लतियाँ होने की सम्भावना अधिक थी और ऐसी ग़लतियाँ होने की सम्भावना भी पर्याप्त थी, जो कि कालान्तर में समाजवादी प्रयोग के गिरने और पूँजीवादी पुनर्स्थापना की ओर ले जायें। ये मनोगत ग़लतियाँ क्या थीं?

सबसे प्रमुख तौर पर जो मनोगत ग़लती थी, वह थी अर्थवाद की ग़लती। अर्थवाद की प्रवृत्ति, यानी मज़दूर वर्ग को हर राजनीतिक लाभ या हानि को आर्थिक नफ़े-नुक़सान में नापने के लिए प्रशिक्षित करना और राजनीतिक सत्ता और राजनीतिक वर्ग संघर्ष के प्रश्न को उठाने में अक्षम बनाने की प्रवृत्ति। यह प्रवृत्ति यूरोप के मज़दूर आन्दोलन में पहले से मौजूद थी। मज़दूर वर्ग के आन्दोलन के भीतर मौजूद इस बुर्जुआ प्रवृत्ति के ख़िलाफ़ लड़ते हुए मार्क्स और एंगेल्स ने बताया था कि मज़दूर वर्ग को एक राजनीतिक वर्ग के तौर पर, यानी एक ऐसे वर्ग के तौर पर जो अपनी राजनीतिक सत्ता की स्थापना करने की परियोजना के साथ वर्ग संघर्ष में भागीदारी कर रहा है, संगठित करने के लिए ज़रूरी है कि मज़दूर वर्ग अपनी आर्थिक माँगों के लिए संघर्ष करते हुए भी एक राजनीतिक नज़रिया अपनाये, वह अपने राजनीतिक वर्ग हितों को समझे और समूचे मालिक वर्ग और उसकी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए अपने आपको संगठित करे।

लेनिन ने भी अर्थवाद की प्रवृत्ति के विरुद्ध सतत् संघर्ष किया और बताया कि अर्थवाद की प्रवृत्ति वास्तव में राजनीतिक सत्ता का प्रश्न उठाने की अक्षमता है जो कि मज़दूर वर्ग को कभी शासक वर्ग के रूप में क़ायम नहीं रहने देगी। लेनिन के बाद के दौर में अर्थवाद के विरुद्ध यह संघर्ष थम-सा गया। लेनिन के बाद सोवियत यूनियन में अर्थवाद किस रूप में प्रकट हुआ? यह उत्पादक शक्तियों के विकास के सिद्धान्त के रूप में प्रकट हुआ। 1936 में जब खेती में सामूहिकीकरण के साथ समाजवादी सम्पत्ति सम्बन्ध स्थापित हो गये और निजी सम्पत्ति का ख़ात्मा हुआ, तो स्तालिन ने कहा कि अब सोवियत यूनियन में शत्रुतापूर्ण वर्ग नहीं हैं। यह एक ग़लत समझदारी थी।

समाजवादी सम्पत्ति सम्बन्धों की स्थापना के साथ समाजवादी उत्पादन सम्बन्धों की स्थापना का काम शुरू होता है, ख़त्म नहीं। इसके बाद भी समाज में वर्गों की मौजूदगी होती है। पूँजीपति वर्ग हारा होता है, लेकिन समाप्त नहीं हुआ होता। अभी माल उत्पादन जारी रहता है, हालाँकि श्रमशक्ति अब माल नहीं रह गयी होती। अधिकांश उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन माल के रूप में ही होता है क्योंकि तमाम सामूहिक फ़ार्मों, राजकीय फ़ार्मों व सहकारी फ़ार्मों व समाजवादी उद्योगों के बीच उनका विनिमय ही होता है। चूँकि मानसिक व शारीरिक श्रम के बीच का अन्तर, उद्योग और कृषि के बीच का अन्तर और गाँव और शहर के बीच का अन्तर बना रहता है और समाजवादी समाज में अभी किये गये सामाजिक श्रम की मात्रा के अनुसार मज़दूर को मज़दूरी का भुगतान होता है, इसलिए यदि उत्पादन सम्बन्धों के क्रान्तिकारी रूपान्तरण के काम को पार्टी के नेतृत्व में व्यापक जनसमुदाय अंजाम नहीं देते, तो समाजवादी समाज में असमानता बढ़ती है, पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों में बढ़ोत्तरी होती है, बुर्जुआ श्रम विभाजन हावी होता है, पूँजीवादी राजनीतिक तत्व समाज में भी जन्म लेते हैं और पार्टी और राज्यसत्ता के भीतर भी; पुराने बुर्जुआ तत्व भी इन परिवर्तनों का लाभ उठाते हैं और अपने आपको बढ़ाते हैं।

ऐसे में, पार्टी और राज्यसत्ता में भी पूँजीवादी तत्वों की प्रधानता बढ़ सकती है जो कि समाजवादी उत्पादन सम्बन्धों की स्थापना के काम को जारी रखते हुए उत्पादक शक्तियों का विकास करने की बजाय, पूँजीवादी तरीक़े से अन्तरवैयक्तिक असमानताओं को बढ़ावा देते हुए उत्पादक शक्तियों के विकास का रास्ता अपनाने लगते हैं, अपने विशेषाधिकारों को बढ़ावा देते हैं, अपनी शक्ति को बढ़ाते हैं और जनसमुदायों की पहलक़दमी को कुचलते हैं। ये तत्व समाज में बुर्जुआ विशेषाधिकारों को सही ठहराने, व्यापक मज़दूर व मेहनतकश किसान जनसमुदायों की पहलक़दमी को खोलने और उन्हें राजनीतिक निर्णय लेने की प्रक्रिया में शिक्षित-प्रशिक्षित करने का विरोध करने, नौकरशाहाना प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने, पार्टी व राज्यसत्ता के अहलकारों के विशेषाधिकारों को बढ़ावा देने का काम करने लगते हैं। नतीजतन, समाजवादी निर्माण का वर्ग संघर्ष का कार्यभार आगे बढ़ने की बजाय पीछे जाने लगता है।

सोवियत यूनियन में स्तालिन काल में और विशेष तौर पर 1930 के दशक में यही प्रक्रिया आगे बढ़ी। मज़दूरों की मज़दूरी के बीच अन्तर बढ़ा, जो कि मानसिक व शारीरिक श्रम के बीच के अन्तर को ही दिखा रहा था, उद्योग और कृषि के बीच का अन्तर बढ़ा, बुर्जुआ विशेषाधिकार और बुर्जुआ विचारधारा का प्रभुत्व बढ़ा। उत्पादक शक्तियों का विकास करना चूँकि प्रमुख उद्देश्य बन चुका था इसलिए पार्टी इन अन्तरवैयक्तिक असमानताओं और उसके फलस्वरूप पैदा होने वाली पूँजीवादी विचारधारा और राजनीति और साथ ही इनके वाहक पूँजीवादी पथगामियों के विरुद्ध समाज, राज्यसत्ता और पार्टी के भीतर सचेतन राजनीतिक व विचारधारात्मक संघर्ष नहीं चला सकी। जब कोई विचारधारा समाज के उन्नत तत्वों और उन्नत वर्ग के भीतर जड़ें जमा लेती है, तो वह भी एक भौतिक शक्ति बन जाती है, यह मार्क्स की बुनियादी शिक्षाओं में से एक था। समाजवादी संक्रमण के दौरान अर्थवाद और उत्पादक शक्तियों को स्थायी तौर पर प्राथमिक मानने की ग़लती बुर्जुआ विचारधारात्मक वर्चस्व को तोड़ने की बजाय उसे मज़बूत बनाती है और जब इस विचारधारा के वाहक समाज, राज्यसत्ता और पार्टी के भीतर जड़ें गहरी कर लेते हैं, तो पूँजीवादी पुनर्स्थापना के ख़तरे पैदा हो जाते हैं।

स्तालिन समाज, राज्यसत्ता और पार्टी में पैदा हो रहे पूँजीवादी तत्वों के विरुद्ध लाक्षणिक संघर्ष चलाते रहे। यही कारण था कि उनके जीवित रहते, जनता के बीच उनके नेतृत्व की गहरी स्वीकार्यता के कारण, बोल्शेविक पार्टी के भीतर पैदा हो चुके पूँजीवादी पथगामी पूँजीवादी पुनर्स्थापना के काम को अंजाम नहीं दे सके। स्तालिन एक प्रकार से वह आख़िरी दीवार थे, जो पूँजीवादी पुनर्स्थापना को रोके हुए थी। लेकिन राज्यसत्ता और पार्टी के भीतर अर्थवाद और उत्पादन शक्तियों की स्थायी प्रधानता की सोच के फलस्वरूप बुर्जुआ विचारधारा और राजनीतिक जड़ें जमा चुके थे और वहीं समाज में मज़दूर वर्ग की राजनीतिक पहलक़दमी भी सुषुप्त हो चुकी थी क्योंकि इसी अर्थवाद और उत्पादकतावाद के कारण पार्टी का जनसमुदायों और जनता की सत्ता के निकायों व वर्गीय संस्थाओं से जीवन्त राजनीतिक रिश्ता टूट गया था और केवल तकनीकी आर्थिक सम्बन्ध रह गये थे। दूसरे शब्दों में, क्रान्तिकारी जनदिशा के अभाव के कारण राजनीतिक कार्यदिशा की ग़लती ने जन्म लिया और यह अन्तत: पूँजीवादी पुनर्स्थापना की ओर ले गया।

नतीजतन, जब मज़दूर वर्ग के ग़द्दार ख्रुश्चेव के नेतृत्व में संशोधनवाद ने बोल्शेविक पार्टी में अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया, 'शान्तिपूर्ण संक्रमण, शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व और शान्तिपूर्ण प्रतियोगिता' के नाम पर ख्रुश्चेव ने समाजवाद का रास्ता छोड़ दिया, जब आने वाले दशकों में सोवियतों, ट्रेड यूनियनों आदि को संशोधनवादी पार्टी का जेबी माल बनाकर मज़दूर वर्ग और व्यापक मेहनतकश आबादी की राजनीतिक पहलक़दमी को निर्णायक तौर पर ख़त्म किया गया, तो मज़दूर वर्ग इसका जवाब नहीं दे सका। स्तालिन अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में समाजवाद की इन समस्याओं पर सोच रहे थे और क़दम-दर-क़दम आगे बढ़ने का प्रयास कर रहे थे। 1930 के दशक के उत्तरार्द्ध में द्वितीय विश्वयुद्ध की तैयारियों के दबाव में, उससे पहले 1920 के दशक में पहले पार्टी के भीतर त्रॉत्स्की के "वामपन्थी" और दक्षिणपन्थी और फिर बुखारिन के दक्षिणपन्थी भटकाव के विरुद्ध सतत् संघर्ष, पार्टी के भीतर ग़द्दारों की तोड़-फोड़, सामूहिकीकरण के जटिल और तीखे वर्ग संघर्ष और फिर 1941 से 1945 तक द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान स्तालिन को इन समस्याओं पर गहराई से सोचने का वक़्त नहीं मिला। साथ ही, यूरोपीय मज़दूर वर्ग आन्दोलन से विरासत में प्राप्त अर्थवाद और यांत्रिक चिन्तन के प्रभाव से भी स्तालिन पूरी तरह से मुक्त नहीं हो सके थे। इन वस्तुगत और मनोगत सीमाओं के कारण अर्थवाद और संशोधनवाद के विरुद्ध लाक्षणिक तौर पर संघर्ष करने के बावजूद स्तालिन उसके ख़िलाफ़ व्यवस्थित तौर पर विचारधारात्मक-राजनीतिक संघर्ष नहीं चला सके और क्रान्तिकारी जनदिशा के अभाव में वे व्यापक सर्वहारा जनसमुदायों की ऊर्जा का इस्तेमाल कर पार्टी में जड़ें जमा चुके पूँजीवादी पथगामियों के विरुद्ध भी निर्णायक संघर्ष नहीं चला सके।

उपरोक्त मनोगत और वस्तुगत कारकों के मिश्रण से जो स्थितियाँ पैदा हुईं उसमें अन्तत: स्तालिन की मृत्यु के बाद संशोधनवादी ख्रुश्चेव के नेतृत्व में सोवियत यूनियन में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना हुई। इसके साथ इतिहास का पहला महान समाजवादी प्रयोग युगान्तरकारी और चमत्कारिक उपलब्धियों के बाद समाप्त हुआ।

सोवियत यूनियन में संशोधनवाद की विजय और माओ की शिक्षा

सोवियत यूनियन में संशोधनवाद की विजय के बाद मज़दूर वर्ग का जो लाल झण्डा ज़मीन पर गिरा था उसे माओ के नेतृत्व में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने उठाया, ख्रुश्चेव के संशोधनवाद के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष किया हालाँकि कुछ देरी से, और फिर महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के युगान्तरकारी प्रयोग के ज़रिए समाजवादी संक्रमण की समस्याओं का हल करने के लिए एक दरवाज़ा खोल दिया। माओ ने बताया कि समाजवादी सत्ता और सम्पत्ति सम्बन्धों की स्थापना के बावजूद विचारधारात्मक तौर पर पूँजीपति वर्ग का वर्चस्व तत्काल समाप्त नहीं हो जाता। चूँकि समाजवादी समाज में भी मानसिक व शारीरिक श्रम, उद्योग व कृषि तथा गाँव व शहर के बीच का अन्तर बना रहता है, विनियमित तौर पर सही लेकिन माल उत्पादन क़ायम रहता है, मुद्रा का अस्तित्व बना रहता है, इसलिए पूँजीवादी तत्व अपने आपको आर्थिक आधार के धरातल पर भी पैदा करते रहते हैं और बुर्जुआ विचारधारात्मक वर्चस्व को बल देते हैं। इसलिए राजनीतिक अधिरचना यानी राज्यसत्ता के रूपान्तरण और निजी सम्पत्ति का ख़ात्मा कर आर्थिक आधार के रूपान्तरण के कार्य को शुरू करने के साथ केवल पहला क़दम उठाया गया होता है। वास्तव में, श्रम विभाजन और वितरण की असमानता के रूप में बुर्जुआ विशेषाधिकार और सीमित रूप में माल उत्पादन अभी उत्पादन सम्बन्धों के धरातल पर भी मौजूद रहते हैं और लगातार पूँजीवादी तत्वों और विचारों को जन्म देते रहते हैं; साथ ही, विचारधारात्मक अधिरचना में अभी राजनीतिक सत्ता खो चुके पूँजीपति वर्ग का ही वर्चस्व होता है।

पूँजीपति वर्ग के विचारधारात्मक वर्चस्व को तोड़कर और उत्पादन सम्बन्धों के क्रान्तिकारी रूपान्तरण को उत्पादक शक्तियों का विकास करते हुए जारी रखकर ही समाजवादी संक्रमण को आगे बढ़ाया जा सकता है और पूँजीवादी पुनर्स्थापना को रोका जा सकता है। यानी, विचारधारात्मक अधिरचना में सतत् क्रान्ति और राजनीति को कमान में रखते हुए, यानी वर्ग संघर्ष को कमान में रखते हुए, उत्पादक शक्तियों का विकास करके ही पूँजीवादी पथगामियों को पूँजीवादी पुनर्स्थापना से रोका जा सकता है, उन पर सर्वहारा वर्ग के सर्वतोमुखी अधिनायकत्व को क़ायम किया जा सकता है और कम्युनिज़्म की ओर आगे बढ़ा जा सकता है। अभी भी वर्ग संघर्ष की कुंजीभूत कड़ी होती है। इन सबके लिए व्यापक मेहनतकश जनसमुदायों पर निर्भर रहना पार्टी की अनिवार्यता है। सवर्हारा वर्ग अकेले इतिहास नहीं बनाता है, बल्कि जनता इतिहास बनाती है। सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व के बिना जनता पूँजीवाद का ख़ात्मा और समाजवाद की स्थापना नहीं कर सकती। यही वर्ग और जनसमुदाय का द्वन्द्व है, जिसे सही तरीक़े से हल न करना या तो लोकरंजकतावाद और जनतावाद की ओर ले जायेगा याफिर हिरावलपन्थ की ओर। क्रान्तिकारी जनदिशा के ज़रिए और मार्क्सवादी-लेनिनवादी-माओवादी विज्ञान की रोशनी में व्यापक जनता को पूँजीवादी पथगामियों के विरुद्ध गोलबन्द करना, पूँजीवादी विचारधारात्मक वर्चस्व को तोड़ना और समाजवादी रूपान्तरण के वर्ग संघर्ष को आगे बढ़ाकर ही पार्टी और उसके नेतृत्व में सर्वहारा वर्ग समाजवादी संक्रमण की समस्याओं को हल कर सकते हैं।

माओ की उपरोक्त शिक्षाओं को महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के पहले प्रयोग के दौरान अनगढ़ रूप में लेकिन युगान्तरकारी तरीक़े से लागू किया गया। माओ ने स्वयं बताया था कि पूँजीवादी पुनर्स्थापना को रोकने के लिए और पूँजीपति वर्ग के विचारधारात्मक वर्चस्व और राजनीतिक प्रतिरोध को निर्णायक तौर पर तोड़ने के लिए एक नहीं बल्कि दर्जनों सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्तियों की ज़रूरत होगी क्योंकि यह कोई घटना नहीं बल्कि एक सतत् जारी प्रक्रिया है। अन्तत:, इस पहले प्रयोग के बाद, चीन में भी ग़द्दार देंग स्याओ पिंग के नेतृत्व में पूँजीवादी पुनर्स्थापना हो गयी। लेकिन इसने भी महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के सिद्धान्त को सही ही साबित किया, न कि ग़लत।

महान समाजवादी अक्तूबर क्रान्ति की सकारात्मक और नकारात्मक शिक्षाओं को आज क्यों और कैसे देखें?

मज़दूर वर्ग का कोई देश नहीं होता, हालाँकि वह अलग-अलग देशों में रहता है। वह अन्तरराष्ट्रीयतावादी होता है। रूसी समाजवादी क्रान्ति की 104वीं वर्षगाँठ पर मज़दूर वर्ग को याद करना होगा कि हमने, यानी हमारे ही रूसी भाइयों और बहनों ने, किस प्रकार पूँजीवादी शोषण की समूची व्यवस्था को उखाड़ फेंका था; हमने एक कहीं उन्नत और समानतामूलक समाजवादी व्यवस्था और मज़दूर सत्ता को स्थापित किया था; हमने बेरोज़गारी, ग़रीबी, भुखमरी और जहालत से जनता को आज़ाद किया था और जीवन को एक नयी ऊँचाइयों तक पहुँचाया था। हमने साबित किया था कि पूँजीवाद से बेहतर व्यवस्था सम्भव है और पूँजीवाद अजर-अमर नहीं है। हमने साबित किया

(पेज 10 पर जारी)

फिर लोहे के गीत हमें गाने होंगे दुर्गम यात्राओं पर चलने के संकल्प जगाने होंगे

(पेज 9 से आगे)

था कि हम एक समूचे देश के उत्पादन, राजकाज और समाज के पूरे ढाँचे को न सिर्फ़ संचालित कर सकते हैं बल्कि कहीं बेहतर और वैज्ञानिक ढंग से संचालित कर सकते हैं।

पूँजीवाद की "अन्तिम विजय" के शोर और मज़दूर वर्ग की "अन्तिम पराजय" के शोर और आज के हार, विपर्यय, निराशा और पस्तहिम्मती के दौर में आज मज़दूर वर्ग को अपनी इन ऐतिहासिक उपलब्धियों को याद करने की ज़रूरत इसलिए है क्योंकि एक क्रान्तिकारी सर्वहारा पुनर्जागरण के बिना हम अक्तूबर क्रान्ति के नये उन्नत संस्करणों को नहीं रच सकते हैं। पूँजीवाद स्वयं अपने गहरे संकट से ग्रस्त है। यह संकट व्यापक मेहनतकश जनता के बीच दुनिया भर में ऐसी स्थितियों को जन्म दे रहा है जो आने वाले समय में स्वत:स्फूर्त विद्रोहों और विशेष स्थितियों में पूँजीपति वर्ग के राजनीतिक संकट को जन्म देगा। लेकिन मज़दूर वर्ग अपनी क्रान्तिकारी विरासत से कटकर इन मौक़ों पर सही क्रान्तिकारी हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। यानी अपनी क्रान्तिकारी विरासत से कटकर मज़दूर वर्ग अपने वर्ग संघर्ष में आगे नहीं बढ़ सकता है। हमें इस क्रान्तिकारी विरासत के नकारात्मक व सकारात्मक दोनों को ही समझना होगा और आज के पूँजीवाद में आये बदलावों के प्रति भी अपने आपको प्रबोधित करना होगा। इस सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन के ज़रिए ही हम अपने आपको राजनीतिक तौर पर संगठित कर सकते हैं।

अक्तूबर क्रान्ति ने हमें ये बातें सिखायी हैं :

क्रान्ति केवल क्रान्तिकारी शक्तियों के मनोगत रूप से तैयार होने से नहीं होती, बल्कि उसके लिए क्रान्तिकारी परिस्थिति का मौजूद होना आवश्यक है। क्रान्तिकारी परिस्थिति के तैयार होने में भी मनोगत शक्तियों की भूमिका होती है, लेकिन उस पर मनोगत शक्तियों का कोई नियंत्रण नहीं होता या वह उनके मनमुताबिक़ नहीं तैयार होतीं।

क्रान्तिकारी परिस्थिति वह होती है जिसमें पूँजीवाद का आर्थिक और सामाजिक संकट कई अन्तरविरोधों के सन्धिबिन्दु के कारण अपने आपको एक राजनीतिक संकट के रूप में पेश करता है, जिसमें कि बुर्जुआ वर्ग अपने राजनीतिक शासन को जारी रखने में अपने आपको अक्षम पा रहा होता है। पूँजीवादी व्यवस्था अपनी नैसर्गिक गति से समय-समय पर ऐसे राजनीतिक संकटों को जन्म देती रहती है, हालाँकि उनके घटित होने का समय-निर्धारण सर्वहारा वर्ग और उसकी क्रान्तिकारी पार्टी पहले से ही नहीं कर सकती है।

इसलिए मज़दूर वर्ग ऐसे राजनीतिक संकटों का इन्तज़ार नहीं करता कि वे पैदा हों तो वह राजनीतिक तौर पर संगठित हो! यदि ऐसे संकटों के पैदा होने पर मज़दूर वर्ग पहले से राजनीतिक व विचारधारात्मक रूप से संगठित और तैयार नहीं है, तो ऐसे संकटों का फ़ायदा धुर दक्षिणपन्थी प्रतिक्रियावादी ताक़तें, जैसे कि फ़ासीवादी, उठाते हैं और पूँजी की नग्न बर्बर तानाशाही को क़ायम करते हैं। रूस में लेनिन ने इस सच्चाई की ओर बार-बार ध्यान दिलाया था।

इसलिए मज़दूर वर्ग लगातार अपने आपको एक राजनीतिक वर्ग के रूप में तैयार करता है, गोलबन्द और संगठित करता है। इसका उच्चतम रूप होता है सर्वहारा वर्ग की एक हिरावल पार्टी का निर्माण जो कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद की विचारधारा से लैस हो, अनुशासित हो, उसका एक गोपनीय ढाँचा हो और क्रान्तिकारी जनदिशा को लागू करके वह एक सही राजनीतिक कार्यदिशा और राजनीतिक कार्यक्रम को अपना सके; यानी ऐसी मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी जिसने मार्क्सवादी विज्ञान और क्रान्तिकारी जनदिशा की रोशनी में अपने समाज में वर्ग संघर्ष का सही मूल्यांकन कर मित्र और शत्रु शक्तियों की सही पहचान की हो। ऐसी पार्टी के निर्माण और गठन का कार्य सर्वहारा वर्ग यदि लगातार नहीं करेगा, तो क्रान्तिकारी परिस्थितियों के पैदा होने पर उसे इसका अवसर नहीं मिलने वाला। इसलिए उसका कार्य है सतत् अपने राजनीतिक संगठन को विकसित करना और एक हिरावल क्रान्तिकारी सर्वहारा पार्टी का निर्माण और गठन करना, जो क्रान्तिकारी परिस्थितियों के पैदा होने पर उन्हें क्रान्ति में तब्दील करने, पूँजीवादी राज्यसत्ता का ध्वंस कर सर्वहारा राज्यसत्ता को स्थापित करने, में सक्षम हो। यह भी लेनिन और रूसी क्रान्ति की बुनियादी शिक्षाओं में से एक है।

यानी क्रान्ति के लिए दो बुनियादी चीज़ों की ज़रूरत है: क्रान्तिकारी विचारधारा और क्रान्तिकारी संगठन। क्रान्तिकारी विचारधारा मार्क्सवाद है और क्रान्तिकारी संगठन क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी। इन दोनों के बिना सर्वहारा वर्ग क्रान्ति को अंजाम नहीं दे सकता। यह लेनिन और अक्तूबर क्रान्ति की सबसे महत्वपूर्ण बुनियादी शिक्षाओं में से एक है।

सोवियत समाजवाद के प्रयोग के सकारात्मक और नकारात्मक हमें सिखाते हैं कि समाजवादी संक्रमण एक लम्बी ऐतिहासिक अवधि होता है, जिसमें पूँजीपति वर्ग राजनीतिक तौर पर हारा होता है, लेकिन समाप्त नहीं हुआ होता; समाज में वर्ग संघर्ष जारी रहता है; माल उत्पादन व तीन महान अन्तरवैयक्तिक असमानताएँ मौजूद रहती हैं जो सतत् पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों, पूँजीवादी तत्वों और पूँजीवादी विचारधारा को समाजवादी समाज में मज़बूत करती हैं; ऐसे में, पार्टी और राज्यसत्ता में भी पूँजीवादी तत्व पैदा होते हैं; इसलिए पार्टी को क्रान्तिकारी जनदिशा लागू करते हुए जनसमुदायों को संगठित करना चाहिए, विचारधारात्मक अधिरचना में सतत् क्रान्ति को जारी रखना चाहिए और राजनीति और वर्ग संघर्ष को कमान में रखते हुए उत्पादक शक्तियों का विकास जारी रखना चाहिए। राजनीति, विचारधारा, कला-साहित्य-संस्कृति और शिक्षा तक के क्षेत्र में सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को सर्वतोमुखी तरीक़े से लागू किये बिना, उत्पादन सम्बन्धों के क्रान्तिकारी रूपान्तरण को सम्पत्ति सम्बन्धों के क्रान्तिकारी रूपान्तरण की मंज़िल से आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है और न ही पूँजीवादी पुनर्स्थापना को रोका जा सकता है। यदि अर्थवाद और उत्पादकतावाद के संशोधनवादी सिद्धान्त का प्रभाव पार्टी और उसके नेतृत्व पर हावी होता है, तो यह पूँजीवादी तत्वों को समाज, पार्टी और राज्यसत्ता में और सशक्त बनाता है और सर्वहारा नेतृत्व को संशोधनवाद के विरुद्ध संघर्ष में नि:शस्त्र कर देता है। इसलिए अर्थवाद और संशोधनवाद के विरुद्ध संघर्ष एक प्रमुख कार्यभार होता है। और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के सिद्धान्त की रोशनी में यह कहा जा सकता है कि यह क्रान्ति के बाद नहीं बल्कि पहले दिन से ही हमारा बुनियादी कार्यभार होना चाहिए।

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का माओ का सिद्धान्त मूलत: समाजवादी समाज में वर्ग संघर्ष को जारी रखने, अधिरचना के धरातल पर क्रान्ति को जारी रखने, उत्पादन सम्बन्धों के क्रान्तिकारी रूपान्तरण को जारी रखने, क्रान्तिकारी जनदिशा को लागू कर व्यापक जनसमुदायों को पूँजीवादी विचारधारा और पूँजीवादी पथगामियों के विरुद्ध सर्वहारा वर्ग और उसकी पार्टी के नेतृत्व में संगठित करने और बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी सर्वहारा अधिनायकत्व को लागू करने का सिद्धान्त है। लेकिन यह सिद्धान्त सोवियत समाजवादी प्रयोग की सकारात्मक और नकारात्मक शिक्षाओं के आधार पर ही विकसित हो सकता था।

आज दुनिया भर के और भारत के सर्वहारा वर्ग को इन शिक्षाओं को समझना होगा, सोवियत समाजवाद की महान उपलब्धियों को जानना होगा, और अपनी ताक़त को समझना होगा। आज हमें इन शिक्षाओं की रोशनी में यह समझना होगा बिना अपनी देशव्यापी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण और गठन के, हम न तो अपनी रोज़मर्रा की आर्थिक व राजनीतिक लड़ाई को सही तरीक़े से लड़ सकते हैं और न ही हम समाजवादी क्रान्ति के ज़रिए मज़दूर सत्ता की स्थापना और समाजवादी व्यवस्था के निर्माण के अपने दूरगामी लक्ष्य को पूरा कर सकते हैं। इसलिए आज हमारे सामने प्रमुख कार्यभार यह है: एक देशव्यापी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी का निर्माण।

निरंकुश सरकारों और सैन्य तानाशाहों के बीच लम्बे समय से पिस रही है अफ़्रीकी जनता

(पेज 6 से आगे)

में आम चुनाव करवा दिये गये।

2010 के चुनाव में अल्फ़ा कोण्डे चौथा राष्ट्रपति चुना गया। चुनाव प्रचार के दौरान और चुने जाने के बाद अल्फ़ा कोण्डे ने भी उन्हीं वायदों का दुहराव किया जैसे पहले के तानाशाह करते आये थे और उन्हीं की तरह ही कोण्डे ने भी जनता की उम्मीदों-आकाँक्षाओं को रौंदना शुरू कर दिया। कोण्डे ने बाहें फैलाकर विदेशी पूँजी निवेश का स्वागत किया। गिनी एक खनिज पदार्थ सम्पन्न देश है, 'बॉक्साइट' का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है। इसके अलावा देश में लोहे, हीरे, सोने, यूरेनियम आदि के विशाल खदान हैं जिनमें से कईयों में खनन अभी शुरू तक नहीं हुए हैं। सेकू तुरे के समय से ही विदेशी कम्पनियों ने और कुछ निजी तथा सरकारी कम्पनियों ने खनिज पदार्थों का खनन शुरू कर दिया था लेकिन प्राकृतिक सम्पदा के अन्धाधुन्ध दोहन ने अल्फ़ा कोण्डे के शासन में तेज़ गति प्राप्त कर ली। कोण्डे ने दुनिया की सबसे बड़ी माइनिंग कम्पनियों का गिनी में खुले हाथों से स्वागत किया। ये कम्पनियाँ खनिज पदार्थों के दोहन के साथ वहाँ के मज़दूरों का भी भयंकर शोषण कर रही हैं। देशी-विदेशी पूँजीपति वर्ग के आशीर्वाद से ही अल्फ़ा कोण्डे ने 2010 और 2015 के चुनावों में धोखाधड़ी करके जीत हासिल की। गिनी के संविधान के अनुसार किसी व्यक्ति को दो बार से ज़्यादा राष्ट्रपति बनने की अनुमति नहीं है। लेकिन 2019 में अल्फ़ा कोण्डे ने फिर जनमत-संग्रह में धाँधली करके संविधान ही बदल दिया। इस घटना के बाद देशभर में जन आक्रोश सड़कों पर उमड़ पड़ा। इस जनान्दोलन का कोण्डे ने बर्बर दमन किया जिसमें कइयों की मौत हुई लेकिन सरकारी सूत्रों के अनुसार मात्र सौ लोगों की मौत हुई। लम्बे समय से ग़रीबी, भुखमरी, अशिक्षा और क्रूर शोषण-अत्याचार झेल रही जनता के ग़ुस्से पर इस घटना ने ईंधन का काम किया। पिछले दो सालों से जनता कोण्डे के ख़िलाफ बार-बार सड़कों पर उतरती रही है। इस जन आक्रोश का फ़ायदा उठा कर मामाडी डौम्बौया की अगुवाई में सेना ने यह तीसरी बार तख़्तापलट किया है।

मामाडी डौम्बौया भी अपने पूर्ववर्ती सैन्य तानाशाहों का अनुसरण करते हुए जनता से विकास के बड़े-बड़े वायदों के साथ चुनावों का भी वायदा कर रहा है। दस साल से अल्फ़ा कोण्डे की निरंकुश सत्ता को झेल रही गिनी की आम जनता को इस तख़्तापलट से कुछ राहत की उम्मीद है। लेकिन गिनी के इतिहास से यह साफ़ है कि अतीत के सैन्य जुण्टाओं की तरह मामाडी डौम्बौया के लोकतांत्रीकरण और आर्थिक विकास के सारे दावे भी ढकोसले ही होंगे। डौम्बौया ने घोषणा कर दी है कि उसकी जुण्टा देशी-विदेशी पूँजी के हित की पूरी रक्षा करेगी। मज़दूर वर्ग के हितों और पूँजीपति वर्ग के हितों की एक साथ रक्षा करने की घोषणा मज़दूर-मेहनतकश वर्ग को दिया गया एक छलावा है। स्पष्ट है कि यह जुण्टा भी सेकू तुरे, कोन्ते, कमारा और अल्फ़ा कोण्डे की तरह ही पूँजीपतियों की सेवा करेगी और मज़दूर-मेहनतकश आबादी की ग़रीबी, बदहाली और शोषण बदस्तूर जारी रहेंगे। असल में ज़्यादा सम्भावना इस बात की है कि मामाडी डौम्बौया की जुण्टा उन सबसे ज़्यादा निरंकुश साबित होगी। विश्व पूँजीवादी संकट के तीव्रतर होने के साथ तथाकथित 'तीसरी दुनिया' के देशों में ज़्यादा निरंकुश सरकारें और ज़्यादा बर्बर सैन्य जुण्टाएँ सत्ता में क़ाबिज़ होंगी। अपने मुनाफ़े की गिरती दर को बढ़ाकर संकट से मुक्ति पाने की उम्मीद में पूँजीपति वर्ग इन निरंकुश सरकारों और सैन्य जुण्टाओं को पूरा समर्थन देगी। गिनी के दो पड़ोसी मुल्क – चाड और माली में इसी साल तख़्तापलट हुआ। फ़्रांस और बाक़ी साम्राज्यवादी देशों ने प्रतिरोध में कुछ ज़बानी जमाख़र्चभर किया और फिर बाद में सैन्य जुण्टाओं के साथ सामान्य रिश्ते क़ायम कर लिये। गिनी की नयी जुण्टा के ख़िलाफ़ भी फ़्रांस, चीन, रूस, अमेरिका और अन्य साम्राज्यवादी ताक़तों का कोई विरोध नहीं दिख रहा है। स्पष्ट है कि कुछ दिनों में इसे भी मान्यता दे दें। यह समझा जा सकता है क्योंकि इस प्रकार की सैन्य तानाशाहियाँ आम तौर पर साम्राज्यवादी देशों की पूँजी को अपने देश की प्राकृतिक सम्पदा और श्रमशक्ति का जमकर दोहन करने का अवसर देती हैं।

यहाँ हमें यह भी याद रखना होगा कि अपनी आज़ादी के बाद राजनीतिक उथल-पुथल के जिस दौर से गिनी गुज़रा है उस दौर से अफ़्रीका के ज़्यादातर देश गुज़रे हैं। गिनी की तरह ही अफ़्रीका के ज़्यादातर देश निरंकुश सरकारों और सैन्य जुण्टाओं के बीच पेण्डुलम की तरह झूलते रहते हैं। अफ़्रीका में खनिज पदार्थों और प्राकृतिक संसाधनों का अकूत भण्डार होने की वजह से साम्राज्यवादी ताक़तों की आर्थिक हितों के लिए वहाँ मौजूदगी रही है। ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा पीटने के लिए साम्राज्यवादी ताक़तें पिछले लम्बे समय से अफ़्रीका में कई नृशंस तानाशाहों को समर्थन देती रही हैं और आगे भी देती रहेंगी।

हम इतना ही कह सकते हैं कि गिनी और अफ़्रीका के ज़्यादातर देशों के मज़दूर और मेहनतकश लम्बे समय से जिस तानाशाही का सामना कर रहे हैं और बार-बार इन तानाशाहों से उम्मीद लगाते हैं वह इसलिए क्योंकि वहाँ मज़दूर-मेहनतकश वर्ग का अपना कोई मज़बूत स्वतंत्र राजनीतिक पक्ष उभरता नहीं दिख रहा है। इन तानाशाहों से उम्मीद लगाने की जगह वहाँ की मेहनतकश जनता को अपने स्वतंत्र राजनीतिक नेतृत्व और आन्दोलन को विकसित करने के प्रयास करने होंगे।

प्रोजेक्ट पेगासस : पूँजीवादी सत्ता के जनविरोधी निगरानी तंत्र का नया औज़ार और शासक वर्ग के विभिन्न धड़ों के गहराते अन्तरविरोध

– प्रसेन

पिछले महीने पूरी दुनिया के राजनीतिक हलक़ों में एक शब्द भ्रमण कर रहा था – पेगासस! 'प्रोजेक्ट पेगासस' के खुलासे के बाद न केवल भारत की संसदीय राजनीति में उथल-पुथल पैदा हो गयी बल्कि विश्व के साम्राज्यवादी सरगनाओं तक इसकी आँच पहुँची। यूँ तो वर्ग समाज के अस्तित्व में आने, राजसत्ता के जन्म के साथ ही शोषक-शासक वर्ग द्वारा अपने हितों के मद्देनज़र विकसित किये गये जननिगरानी तंत्र का एक लम्बा इतिहास है। लेकिन वर्ग समाज की सबसे उन्नत अवस्था यानी पूँजीवाद के या वर्तमान ढाँचागत संकट से ग्रस्त पूँजीवाद के दौर में, सूचना तंत्र की स्थूल और सूक्ष्म स्तर पर विराट प्रगति ने राजसत्ता के हाथ में अभूतपूर्व औज़ार सौंप दिया है। कम्प्यूटर, मोबाइल फ़ोन, इण्टरनेट आदि के ज़रिए डेटा पर सवार होकर पूरी दुनिया में शब्दों, चित्रों, ऑडियो-वीडियो के रूप में घूम रही सूचनाओं को सूचना-संचार की दुनिया के विश्व पूँजीवादी खिलाड़ियों और पूँजीवादी राजसत्ता द्वारा कहीं भी उतारा जा सकता है। इसके ज़रिए किसी की भी निजता के क्षेत्र में घुसकर उसकी सारी बातचीत, रुचियों, चाहतों आदि को जाना जा सकता है। स्पष्ट है कि इन सारी जानकारियों का राजनीतिक तौर पर सरकार द्वारा शोषक वर्गों के हित में और पूँजीवादी खिलाड़ियों द्वारा बाज़ार में इस्तेमाल किया जाता है।

पेगासस को अब तक का सबसे उन्नत व सबसे ख़तरनाक जासूसी स्पाइवेयर माना जा रहा है। इसे इज़रायल की एनएसओ ग्रुप कम्पनी बनाती है। यह कम्पनी इज़रायली ख़ुफ़िया विभाग की सीधी देखरेख में काम करती है। एनएसओ का दावा है कि वह पेगासस मात्र सरकारों को बेचती है न कि निजी संस्थाओं या व्यक्तियों को। 'प्रोजेक्ट पेगासस' के खुलासे से यह पता चला कि भारत, बहरीन, यूएई, सउदी अरब आदि को मिलाकर क़रीब 50 देश पेगासस के ग्राहक हैं। 'प्रोजेक्ट पेगासस' के खुलासे से यह भी पूरी तरह साफ़ है कि इसका इस्तेमाल सरकार द्वारा अपने ही देश के राजनीतिक-सामाजिक कार्यकर्ताओं, मानवाधिकार कर्मियों, जनपक्षधर पत्रकारों, वकीलों, बुद्धिजीवियों, विपक्षी नेताओं और प्रशासनिक अधिकारियों आदि पर किया जा रहा है।

पेगासस एक ऐसा जासूसी सॉफ़्टवेयर है जो मोबाइल मैसेजिंग ऐप से पासवर्ड, सम्पर्क सूची, कैलेण्डर, ईवेण्ट, टेक्स्ट सन्देश, लाइव वॉयस कॉल सहित यूज़र्स के निजी डेटा को चुरा सकता है। इतना ही नहीं, फ़ोन के आसपास की सभी गतिविधियों को रिकॉर्ड करने के लिए फ़ोन बन्द होने पर भी फ़ोन कैमरा और माइक्रोफ़ोन को चालू किया जा सकता है। उपयोगकर्ता की जानकारी के बिना यह मालवेयर ईमेल, लोकेशन ट्रैकिंग, नेटवर्क विवरण, डिवाइस सेटिंग्स और ब्राउज़िंग हिस्ट्री डेटा तक भी पहुँच सकता है। यह मालवेयर पासवर्ड से सुरक्षित उपकरणों तक में पहुँचने की क्षमता रखता है। इंस्टॉल किये गये डिवाइस पर कोई निशान न छोड़ने, कम से कम बैटरी, मेमोरी और डेटा की खपत इसकी विशेषताएँ हैं ताकि उपयोगकर्ता को सन्देह पैदा न हो। जोखिम की स्थिति में स्वयं से अनइंस्टॉल होना, गहन विश्लेषण के लिए किसी भी डिलीट की गयी फ़ाइल को पुनः प्राप्त करने की क्षमता भी पेगासस स्पाइवेयर में है। पीबीएनएस की रिपोर्ट के मुताबिक़, पेगासस एक लिंक भेजता है और यदि उपयोगकर्ता लिंक पर क्लिक करता है, तो उसके फ़ोन पर मालवेयर या निगरानी की अनुमति देने वाला कोड इंस्टॉल हो जाता है। बताया जा रहा है कि इसके नये संस्करण के लिए किसी लिंक पर क्लिक करने की भी आवश्यकता नहीं होती है।

पेगासस एक बेहद महँगा स्पाइवेयर है। 2016 में पेगासस के ज़रिए 10 लोगों की जासूसी का ख़र्च क़रीब 9 करोड़ रुपये बैठता था। इसमें क़रीब 4 करोड़ 84 लाख रुपये 10 फ़ोन को हैक करने का ख़र्च था और क़रीब 3 करोड़ 75 लाख रुपये इंस्टॉलेशन फ़ीस के तौर पर चार्ज किये जाते थे। भारत में पेगासस द्वारा क़रीब 300 लोगों की जासूसी पर सरकार द्वारा ख़र्च का हिसाब लगाया जाये तो 2016 के दाम पर यह ख़र्च क़रीब 2700 करोड़ रुपये बैठेगा।

पेगासस स्पाइवेयर की जानकारी कैसे हुई?

पेगासस से जुड़ी जानकारी पहली बार 2016 में संयुक्त अरब अमीरात के मानवाधिकार कार्यकर्ता अहमद मंसूर की बदौलत मिली। उन्हें कई सन्दिग्ध एसएमएस प्राप्त हुए थे। उन्होंने अपने फ़ोन के विषय में टोरण्टो विश्वविद्यालय के 'सिटीजन लैब' के जानकारों और एक अन्य साइबर सुरक्षा फ़र्म 'लुकआउट' से मदद ली। मंसूर का अन्दाज़ा सही था। अगर उन्होंने लिंक पर क्लिक किया होता, तो उनका आइफ़ोन मालवेयर से संक्रमित हो जाता। इस मालवेयर को पेगासस का नाम दिया गया। ग़ौर करने वाली बात यह है कि आमतौर पर सुरक्षित माने जाने वाले एप्पल फ़ोन की सुरक्षा को ये स्पाइवेयर भेदने में कामयाब हुआ। इसके बाद 2017 में 'न्यूयॉर्क टाइम्स' में छपी एक रिपोर्ट के मुताबिक़ मेक्सिको की सरकार पर पेगासस की मदद से मोबाइल की जासूसी करने वाला उपकरण बनाने का आरोप लगा। रिपोर्ट के मुताबिक़ इसका इस्तेमाल मेक्सिको में मानवाधिकार कार्यकर्ताओं, पत्रकारों और भ्रष्टाचार विरोधी कार्यकर्ताओं के ख़िलाफ़ किया जा रहा था। मई 2020 में आयी एक रिपोर्ट में आरोप लगाया गया कि एनएसओ ग्रुप ने यूज़र्स के फ़ोन में हैकिंग सॉफ़्टवेयर डालने के लिए फ़ेसुबक की तरह दिखने वाली वेबसाइट का प्रयोग किया। समाचार वेबसाइट 'मदरबोर्ड' की एक जाँच में दावा किया गया है कि एनएसओ ने पेगासस हैकिंग टूल को फैलाने के लिए एक फ़ेसुबक के मिलता जुलता डोमेन बनाया और इस काम के लिए अमेरिका में मौजूद सर्वरों का इस्तेमाल किया गया। बाद में 'फ़ेसुबक' ने बताया कि उन्होंने इस डोमेन पर अधिकार हासिल किया ताकि इस स्पाइवेयर को फैलने से रोका जा सके। एनएसओ कम्पनी पर सऊदी सरकार को सॉफ़्टवेयर देने का भी आरोप है, जिसका पत्रकार जमाल खशोगी की हत्या से पहले जासूसी करने के लिए इस्तेमाल किया गया था। दिसम्बर 2020 में साइबर सुरक्षा से जुड़े शोधकर्ताओं ने आरोप लगाया कि कम्पनी के बनाये गये स्पाइवेयर से अलजज़ीरा के दर्जनों पत्रकारों का फ़ोन कथित तौर पर हैक कर लिया गया था।

अभी हाल ही में ये मामला तब सामने आया जब एनएसओ के किसी व्हिसलब्लोवर द्वारा फ़्रांस के जनपक्षधर पत्रकारों के समूह 'फ़ॉर्बिडेन स्टोरीज़' को एक सूची मिली, जिसमें दुनिया के 50 हज़ार से ज़्यादा फ़ोन नम्बर थे। पेगासस इन नम्बरों को या तो अपनी घुसपैठ का शिकार बना चुका है या बनाने वाला था। 50000 फ़ोन नम्बरों की सूचना लीक होने के बाद दुनिया के 17 जाने-माने मीडिया संस्थानों द गार्जियन, ले मोण्ड, वाशिंगटन पोस्ट, द वायर, फ़्रण्टलाइन आदि की लैब में जाँच-पड़ताल के बाद लीक हुए नम्बरों की पेगासस द्वारा जासूसी की पुष्टि हुई। 'द वायर' के मुताबिक़ भारत सरकार ने 2017 से 2019 के दौरान क़रीब 300 भारतीयों की जासूसी की है। जिनमें कम से कम 40 भारतीय पत्रकारों के फ़ोन को जासूसी के लिए पेगासस की मदद से हैक किया गया था।

पेगासस स्पाइवेयर विश्व पूँजीवादी जननिगरानी तंत्र के समुद्र में डूबे हिमखण्ड का शिखर मात्र है। इसके अलावा फिंसफिशर, पैकेजशेपर जैसे और न जाने कितने स्पाइवेयर मौजूद हैं जो यही काम कर रहे हैं। वास्तव में देखा जाये तो सूचना-संचार के अभूतपूर्व विकास से ग्लोबल सर्विलान्स कैपिटलिज़्म का एक पूरा तंत्र खड़ा हुआ है। इस तंत्र की एक भुजा पूँजीवादी बाज़ार के हितों की निगरानी कर रही है तो दूसरी पूँजीवादी राजसत्ता के हितों के मद्देनज़र जन असन्तोषों की। ग्लोबल सर्विलान्स कैपिटलिज़्म के इस तंत्र में सरकार और बड़ी-बड़ी पूँजीवादी कम्पनियाँ लगी हुई हैं। ये पूरा तंत्र न केवल बाज़ार के हितों की निगरानी करता है बल्कि यह बाज़ार के सांस्कृतिक अनुकूलन का माध्यम भी है। लोगों के फ़ोन नम्बर, बैंक अकाउण्ट, राशन कार्ड, बीमा, बिजली से सम्बन्धित जानकारियों के अलावा लोगों की रुचियों, आदतों से सम्बन्धित जानकारियाँ बड़ी आसानी से बड़ी-बड़ी कम्पनियों तक पहुँच जाती हैं। यह तंत्र इतना उन्नत है कि आप मसलन जूते की बात कीजिए और फिर आप अपना फ़ोन खोलिए तो अक्सर जूते का प्रचार आपके स्क्रीन, फ़ेसुबक आदि पर आ जाता है। फ़ोन आपको सुनता रहता है और आपकी बातों से बाज़ार के काम की चीज़ निकालकर कम्पनियों तक पहुँचाता रहता है। फिर कम्पनी आपकी क्षमता, रुचि आदि को ध्यान रखती हुई सामानों की पूरी लिस्ट आपके सामने भेजती रहती है। इस सन्दर्भ में शोशना जुबोफ़ की वृहदाकार पुस्तक 'द एज ऑफ़ सर्विलांस कैपिटलिज़्म' (The Age of Surveillance Capitalism) गूगल, फ़ेसुबक जैसे प्लेटफ़ॉर्म और अमेज़न जैसी ई-कम्पनी के माध्यम से इस पूरे गोरखधन्धे की बारीक जाँच-पड़ताल पेश करती है। इस पुस्तक की कमज़ोरी यह है कि यह राजसत्ता की कारगुज़ारियों को ठीक से सामने नहीं लाती।

अब एक बार फिर 'प्रोजेक्ट पेगासस' पर वापस लौटते हैं। पेगासस स्पाइवेयर के खुलासे पर राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर आख़िर इतना शोर क्यों मचा? यह वर्तमान समय में एक ओपेन सीक्रेट है कि पूरी दुनिया का शासक वर्ग अपने बनाये नियमों द्वारा या उसका अतिक्रमण करके पहले भी लोगों की जासूसी करवाता रहा है। एक पुरानी कहावत है – लुटेरों को भी आपस में ईमानदारी की ज़रूरत होती है। लेकिन पूँजीवादी लुटेरों के बीच हितों को लेकर जो भयानक गला-काटू होड़ चलती रहती है, उसमें हर तरह के तिकड़म, साम-दाम-दण्ड-भेद का भरपूर उपयोग होता है। इसलिए एक कहावत यह भी है कि लुटेरे आपस में रात्रि-भोज करते समय लम्बे हैण्डल वाले चम्मच का इस्तेमाल करते हैं! पूँजीवादी व्यवस्था कोई एकाश्मी व्यवस्था नहीं है। पूँजीवादी व्यवस्था के आर्थिक अन्तरविरोध राजनीतिक तौर पर पूँजीवादी लुटेरों के अलग-अलग धड़ों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली पूँजीवादी पार्टियों और एक पार्टी के भीतर भी कई ब्लॉकों के आपसी अन्तरविरोध के रूप में प्रकट होते हैं। पहले भी बाज़ार में पैदा होने वाला पूँजीपतियों का 'दुश्मनाना भाईचारा' उन्हें एक-दूसरे का सगा नहीं होने देता था और एक-दूसरे की गर्दन रेत देने का कोई अवसर वे गँवाते नहीं थे, लेकिन वर्तमान समय में विश्व पूँजीवाद जिस आर्थिक और राजनीतिक संकट से गुज़र रहा है, उसमें आपसी विश्वसनीयता के किसी भी नियम के और भी कोई मायने नहीं रह गये हैं। उनकी राजनीतिक एकता केवल सर्वहारा वर्ग और व्यापक मेहनतकश जनता के विरुद्ध प्रकट होती है। 'प्रोजेक्ट पेगासस' ने इनकी आपसी विश्वसनीयता की नौटंकी की चादर को भी उघाड़ दिया। भारत के अलावा पेगासस के सभी ख़रीदार देशों की सरकारों द्वारा पेगासस के ज़रिए जिन लोगों की जासूसी की गयी उनमें ज़्यादातर वे पत्रकार और नौकरशाह हैं जो जनपक्षधर अवस्थिति से सरकार व उनकी नीतियों का मुखर विरोध कर रहे थे, विपक्ष के नेता हैं, पार्टी के भीतर के विरोधी ब्लॉक हैं, प्रशासनिक ढाँचे में सरकार की हाँ में हाँ न मिलाने वाले लोग हैं। भारत में जिन लोगों की जासूसी करवायी गयी है उनमें ज़्यादातर मोदी सरकार की नीतियों के मुखर आलोचक रहे हैं या असहमत रहे हैं। अगर पत्रकारों की बात की जाये तो हिन्दुस्तान टाइम्स, इण्डियन एक्सप्रेस, टीवी-18, द हिन्दू, द ट्रिब्यून, द वायर जैसे संस्थानों से जुड़े पत्रकार जैसे एम के वेणु, सिद्धार्थ वरदराजन, रोहिणी सिंह, स्वाती चतुर्वेदी आदि के अलावा कई स्वतंत्र पत्रकार हैं, जो मोदी सरकार के ख़िलाफ़ मुखर थे। इन पत्रकारों के अलावा विपक्षी पार्टी जैसे कांग्रेस नेता राहुल गाँधी और कांग्रेस के राजनीतिक रणनीतिकार प्रशान्त किशोर, सुप्रीम कोर्ट के जज और सुरक्षा एजेंसियों के मौजूदा और पूर्व हेड समेत कई बिजनेसमैन शामिल हैं। प्रशासनिक अधिकारियों में इलेक्शन कमिश्नर अशोक लवासा के फ़ोन की जासूसी की गयी जो मोदी की हाँ में हाँ नहीं मिलाते थे। सुप्रीम कोर्ट के पूर्व जज रंजन गोगोई पर यौन उत्पीड़न का आरोप लगाने वाली महिला का फ़ोन नम्बर भी इस लिस्ट में शामिल है। इतना ही नहीं पेगासस द्वारा जिनकी जासूसी करवायी गयी उसमें ख़ुद भाजपा के दो नेता केन्द्रीय मंत्री प्रह्लाद सिंह पटेल और रेल तथा आईटी मंत्री अश्विनी वैष्णव का नाम है। इससे पूँजीवादी राज्यसत्ता और पूँजीपतियों के विभिन्न धड़ों और फ़ासीवादी भाजपा के अलग-अलग ब्लॉकों के अन्तरविरोध और पार्टी के भीतर हावी ब्लॉक द्वारा नौकरशाही, न्यायपालिका को साधने और ब्लैकमेल करने का भी खुलासा होता है। 'प्रोजेक्ट पेगासस' के खुलासे से मचने वाले शोर के पीछे एक महत्वपूर्ण वजह यही है कि पूँजीवादी लुटेरों के विभिन्न राजनीतिक धड़ों के आपसी अन्तरविरोध उभरकर सामने आ गये। दूसरी वजह यह है कि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर फ़्रांस के राष्ट्रपति के फ़ोन की जासूसी की ख़बर आने पर फ़्रांस का बुर्जआ वर्ग असन्तुष्ट है। फ़्रांस के राष्ट्रपति को अपना फ़ोन बदलना पड़ा! फ़्रांसीसी सरकार द्वारा इस पूरे मामले की जाँच की अनुमति देने से भी माहौल गरम हो गया। 'प्रोजेक्ट पेगासस' के खुलासे के बाद राफ़ेल डील की फ़ाइल फिर से खुल गयी है। अन्तरराष्ट्रीय दबाव के चलते इज़राइल को एनएसओ के ऑफ़िस पर छापे मारने पड़े और जाँच बैठानी पड़ी।

साफ़ है अगर राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर बुर्जुआ वर्ग के आपसी अन्तरविरोध न उभर जाते तो 'प्रोजेक्ट पेगासस' पर इतना शोर क़तई न मचता। इसका सबसे महत्वपूर्ण प्रमाण है अमेरिका के मैसाच्युसेट्स की डिजिटल फ़ोरेंसिक फ़र्म 'आर्सेनल कंसल्टिंग' की तीन रिपोर्टें। ग़ौरतलब है कि वाशिंगटन पोस्ट की भारत संवाददाता निहा नसीह की एक रिपोर्ट के हवाले से पता चला है कि 'आर्सेनल कंसल्टिंग' ने बहुचर्चित भीमा कोरेगाँव, प्रधानमंत्री को मारने के तथाकथित माओवादी षड्यंत्र की साज़िश में यूएपीए के तहत जेल में बन्द आरोपियों में से दो – रोना विल्सन और सुरेन्द्र गाड्गिल के डिजिटल रिकॉर्ड्स और ई-मेल की जाँच के बाद पाया है कि किसी हैकर के ज़रिए इन दोनों के कम्प्यूटर में आपत्तिजनक सामग्री इंस्टॉल की गयी थी। गिरफ़्तारी के पहले फ़ादर स्टेन (जिनकी कुछ दिन पहले जेल में मौत हो गयी), गौतम नौलखा और आनन्द तेलतुम्बडे ने भी यही बात कही थी। इस पूरे मसले पर राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की मीडिया (कुछ को छोड़कर) ने कोई शोर नहीं मचाया और न

(पेज 12 पर जारी)

प्रोजेक्ट पेगासस : पूँजीवादी सत्ता के जनविरोधी निगरानी तंत्र का नया औज़ार

(पेज 11 से आगे)

ही विपक्षी दल या उसके नेताओं ने कोई उठा-पटक की। बात स्पष्ट है – इस मामले में चूँकि मसला राज्य बनाम जनता के हितों के लिए आवाज़ उठाने वाले सामाजिक/राजनीतिक कार्यकर्ताओं का है इसलिए कोई शोर नहीं। जबकि प्रोजेक्ट पेगासस के खुलासे ने राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग के विभिन्न धड़ों के अन्तरविरोध को उभार दिया इसलिए इतना हँगामा बरपा।

भारत में फ़ोन टैपिंग का मामला नया नहीं है। इसकी क़ानूनी वैधता है। ब्रिटिश औपनिवेशिक ग़ुलामी के समय बने भारतीय टेलीग्राफ़ अधिनियम, 1885 की धारा 5 (2) आज़ादी के बाद भी लागू थी। कम्प्यूटर, मोबाइल फ़ोन, इण्टरनेट आदि के बाद नये क़ानून बनाये गये। सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 की धारा 69 केन्द्र सरकार या राज्य सरकार को किसी भी कम्प्यूटर संसाधन में उत्पन्न, प्रेषित, प्राप्त या संग्रहित किसी भी जानकारी को इण्टरसेप्ट, मॉनिटर या डिक्रिप्ट करने का अधिकार देती है। इस तरह के इण्टरसेप्शन के लिए केन्द्र सरकार ने 10 एजेंसियों को अधिकृत किया है। ये एजेंसियां हैं – इण्टेलीजेंस ब्यूरो, नारकोटिक्स कण्ट्रोल ब्यूरो, प्रवर्तन निदेशालय, केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड, राजस्व ख़ुफ़िया निदेशालय, केन्द्रीय जाँच ब्यूरो, राष्ट्रीय जाँच एजेंसी; कैबिनेट सचिवालय (रॉ), सिग्नल इण्टेलीजेंस निदेशालय (केवल जम्मू और कश्मीर, उत्तर पूर्व और असम के सेवा क्षेत्रों के लिए) और पुलिस आयुक्त, दिल्ली। ये अधिकार भारत की सम्प्रभुता या अखण्डता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध या सार्वजनिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए या इनसे जुड़े किसी संज्ञेय अपराध को रोकने के लिए या किसी संज्ञेय अपराध की जाँच के लिए दिये गये हैं। किसी भी एजेंसी को इण्टरसेप्शन या मॉनिटरिंग या डिक्रिप्शन के लिए कोई व्यापक अनुमति नहीं है और प्रत्येक मामले में क़ानून और नियमों की उचित प्रक्रिया के अनुसार सक्षम प्राधिकारी से अनुमति की आवश्यकता होती है। साथ ही प्रत्येक मामले की समीक्षा केन्द्र में कैबिनेट सचिव और राज्य सरकारों में मुख्य सचिव की अध्यक्षता वाली एक समिति करती है। एक बार इजाज़त मिलने के बाद इण्टरसेप्शन को दो महीने तक जारी रखा जा सकता है और दो बार रिन्यू किया जा सकता है लेकिन किसी भी स्थिति में ये इण्टरसेप्शन 180 दिनों से ज़्यादा नहीं किया जा सकता।

लेकिन फिर जैसा कि हर क़ानून के साथ होता है। सरकार इसका इस्तेमाल अपने राजनीतिक विरोधियों मसलन राजनीतिक-सामाजिक कार्यकर्ताओं, जनपक्षधर पत्रकारों, मानवाधिकार-कर्मियों, जजों, विपक्ष के नेताओं आदि के लिए करती है। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण, जासूसी के इन औज़ारों को चाक-चौबन्द करने का असली बुनियादी और दूरगामी मक़सद है जनता की क्रान्तिकारी शक्तियों को कुचलना। बाक़ी लक्ष्य गौण हैं, हालाँकि वे तात्कालिक तौर पर प्रमुख दिख सकते हैं। इण्टरसेप्शन के लिए जो वजहें दी गयी हैं वे इतनी व्यापक और इतनी अस्पष्ट हैं कि बात सरकार की मर्ज़ी की बन जाती है।

क़ानून के दुरुपयोग के अलावा अब बात करते हैं फ़ासीवादी मोदी सरकार द्वारा अपनाये गये ग़ैर-क़ानूनी तरीक़ों के बारे में। सरकार ने संविधान में मौजूद 'निजता' के मौलिक अधिकार की धज्जियाँ उड़ाते हुए लोगों की जासूसी के लिए और भी कई सिस्टम बनाये हैं। जिनमें कॉम्प्रिहेंसिव मॉनिटरिंग सिस्टम, नेटग्रेड और नेत्र जैसे मुख्य हैं। सरकार का यह सिस्टम इण्टरनेट के ज़रिए थोक में लोगों से सम्बन्धित जानकारियाँ इकट्ठा करने के लिए बनाया गया है। 2012 में 'द इण्डियन एक्सप्रेस' अख़बार ने आरटीआई का इस्तेमाल कर जुटायी गयी जानकारी के आधार पर रिपोर्ट किया कि केन्द्रीय गृह मंत्रालय हर महीने औसतन 7,500 से 9,000 टेलीफ़ोन इण्टरसेप्शन यानी हर दिन औसतन 250-300 टेलीफ़ोन इण्टरसेप्शन के एप्लीकेशन को स्वीकृति देता है। इतने एप्लीकेशन की पूरी तरह जाँच करके स्वीकृति दे पाना होम सेक्रेटरी के लिए सम्भव ही नहीं है। ज़ाहिर है कि इतने सारे इण्टरसेप्शन की स्वीकृति मनमर्ज़ी तरीक़े से बिना यह देखे दी जा रही है किसका इण्टरसेप्शन क़ानूनी दायरे के अन्दर है और किसका उसके बाहर।

जबकि स्पाईवेयर का इस्तेमाल तो पूरी तरह अवैध है। क्योंकि स्पाईवेयर किसी के सिस्टम में बग़ैर इजाज़त के घुसता है, डेटा को एकत्रित करता है, और फिर उस डेटा को सिस्टम के बग़ैर इजाज़त या जानकारी के बाहर भेजता है। मोदी सरकार इसी पेंच में फँसी है। पेगासस के मामले में सरकार इसके इस्तेमाल को न तो पूरी तरह से नकार रही है और न ही स्वीकार कर रही है। सरकार का बस इतना कहना है कि हमने कोई अवैध इण्टरसेप्शन नहीं किया है। हमने जो किया क़ानूनसंगत तरीक़े से किया है! पेगासस के इस्तेमाल करने को पूरी तरह से नकार देने पर सरकार के सामने संकट यह है कि उस सूरत में सरकार पर इस मामले की तफ़्तीश कराने का मामला बन जायेगा। पेगासस जासूसी मामले में सरकार की लिप्तता के बारे में देश के जाने-माने वकील प्रशान्त भूषण का कहना है कि सरकार ने लोगों की जासूसी के लिए लोकसभा चुनाव-2019 से पहले राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद सचिवालय (एनएससीएस) के बजट में क़रीब 10 बार बढ़ोत्तरी की। जिस कारण एनएससीएस के लिए वित्त वर्ष 2016-17 में बजट आवण्टन 33.17 करोड़ रुपये से 10 गुना बढ़कर वर्ष 2017-18 में 333.58 करोड़ रुपये हो गया।

कुल मिलकर कहा जाये तो 'प्रोजेक्ट पेगासस' का खुलासा पूँजीवादी विश्व के जनविरोधी जननिगरानी तंत्र का खुलासा है। यह पूँजीवादी बाज़ार और राज्यसत्ता के आपसी गँठजोड़ के सच का नंगा खुलासा है। यह पूँजीपति वर्ग के हाथ में सूचना प्रौद्योगिकी के रूप में उस अतिविकसित औज़ार का खुलासा है जो डेटा के रूप में दुनियाभर में फैले विराट अदृश्य जाल के ज़रिए किसी भी जानकारी को पाने में आने वाली बाधा को भेद सकता है। लेकिन यह जननिगरानी तंत्र एक तरफ़ जितना पूँजीवादी व्यवस्था व राज्यसत्ता की शक्तिमत्ता को इंगित करता है उतना ही दूसरी तरफ़ यह पूँजीवादी व्यवस्था के बढ़ते असमाधेय आर्थिक और राजनीतिक संकट तथा राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पूँजीपति वर्ग और राज्यसत्ता के विभिन्न धड़ों, ब्लॉकों के बीच की भयानक कुत्ताघसीटी को, शक्तिमत्ता के काग़ज़ीपन को भी उजागर करता है। साम्राज्यवादी, भारत के फ़ासीवादी और दुनिया के तानाशाह जनता के असन्तोषों पर नज़र रखने और उन्हें कुचलने के लिए चाहे जितनी उन्नत तकनीक हासिल कर लें लेकिन अन्ततः जनता के ग़ुस्से को संगठित होने और विस्फोट के वक़्त को वे न तो रोक सकते है और न भाँप सकते हैं। जर्मनी के मशहूर फ़ासीवाद विरोधी योद्धा बर्टोल्ट ब्रेख़्त की यह बात दुनियाभर के हुक्मरानों का अन्तिम समय तक पीछा करती रहेगी – जनरल तुम्हारा टैंक एक मज़बूत वाहन है...लेकिन उसमें एक नुक्स है – उसे ड्राइवर चाहिए।

कोयले की कमी और बिजली संकट पूँजीवाद में निहित अराजकता का नतीजा है

(पेज 1 से आगे)

दिन तक का ही कोयला बचा रह गया था और बिजली का संकट पैदा हो गया।

चीन और भारत सहित दुनिया की कई अग्रणी अर्थव्यवस्थाओं में कोयले की माँग में आयी तेज़ी की वजह से अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में कोयले की क़ीमतों में दो से तीन गुना की बढ़ोत्तरी हो गयी है। इस वजह से भारत के वे बिजली संयंत्र जो आयातित कोयले (इण्डोनेशिया, ऑस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ़्रीका से) पर निर्भर थे उन्होंने बिजली उत्पादन बन्द कर दिया क्योंकि कोयले की क़ीमत में बढ़ोत्तरी से उनका मुनाफ़ा कम होने लगा। इनमें टाटा, अम्बानी, एस्सार और कई सार्वजनिक क्षेत्र के बिजली संयंत्र शामिल हैं। ग़ौरतलब है कि भारत के क़रीब एक-चौथाई कोयला आधारित बिजली संयंत्रों में आयातित कोयले का इस्तेमाल होता है। शेष तीन-चौथाई बिजली उत्पादन संयंत्रों में देश की खदानों से निकलने वाले कोयले का इस्तेमाल होता है जिसके 80 प्रतिशत हिस्से की आपूर्ति सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनी कोल इण्डिया लिमिटेड करती है। ग़ौरतलब है कि इस साल मानसून के दौरान पूर्वी व मध्य भारत के कोयला बाहुल्य वाले राज्यों में अधिक बारिश होने की वजह से कोयले की खानों और ढुलाई के रास्तों में बाढ़ आ जाने की वजह से कोयले की आपूर्ति बाधित हुई। इस प्रकार आन्तरिक और बाह्य दोनों ही कारणों से कोयले की आपूर्ति का बाधित होना मौजूदा बिजली संकट का तात्कालिक कारण है।

उपरोक्त बाह्य और आन्तरिक दोनों ही कारण बाज़ार की अराजक शक्तियों की ही पैदाइश हैं। एक योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था में ऐसे किसी भी असन्तुलन का पूर्वानुमान लगाकर पहले से स्टॉक इकट्ठा करके संकट की परिस्थिति को टालने की योजना बनायी जा सकती है। यह पूर्वानुमान लगाना कोई मुश्किल काम नहीं था कि कोरोना महामारी का ख़तरा टलने के बाद उत्पादन बढ़ने से कोयले की माँग में तेज़ी आयेगी। पूँजीवाद में एक कम्पनी के भीतर तो मुनाफ़ा अधिक से अधिक बढ़ाने के मद्देनज़र योजना बनायी जाती है लेकिन पूरे समाज के स्तर पर अराजकता का ही बोलबाला रहता है। इसी वजह से अधिकांश कोयला-आधारित बिजली संयंत्रों में कोयले के स्टॉक की कोई योजना नहीं बनायी गयी। कहने को केन्द्रीय विद्युत नियामक बोर्ड के अनुसार हर बिजली संयंत्र को कोयले की खान से उसकी दूरी के अनुसार कम से कम 15 से 30 दिन के बिजली उत्पादन के लिए कोयले का स्टॉक रखना चाहिए लेकिन वास्तव में इसका पालन कोई भी संयंत्र नहीं करता क्योंकि कोयले का अधिक स्टॉक रखने से संयंत्र का ख़र्च बढ़ेगा और मुनाफ़े पर आधारित बिजली उत्पादक इकाइयाँ यह बोझ बर्दाश्त नहीं कर सकतीं। नवउदारवादी भूमण्डलीकरण के मौजूदा दौर में निजी और सार्वजनिक दोनों तरह की बिजली उत्पादक कम्पनियाँ 'जस्ट-इन-टाइम' इन्वेण्टरी सिस्टम का पालन करती हैं जिसके अनुसार वे कोयले का बहुत ज़्यादा स्टॉक इकट्ठा करने की बजाय बिजली की माँग के अनुसार कोयला ख़रीदती हैं क्योंकि उनका मुख्य मक़सद मुनाफ़ा कमाना होता है। मौजूदा संकट यह स्पष्ट रूप से दिखा रहा है कि कोयला और बिजली जैसे बुनियादी और अवरचनागत क्षेत्रों में इस तरह का सिस्टम उत्पादन की पूरी मशीनरी को ठप करने की कगार पर ला सकता है।

कोयले की कमी की एक वजह देश की सबसे बड़ी कोयला उत्पादक कम्पनी कोल इण्डिया लिमिटेड की नौकरशाहाना कार्यप्रणाली और उसमें सरकार का ग़ैर-ज़रूरी हस्तक्षेप भी है। ग़ौरतलब है कि भारत में कोयले के कुल उत्पादन का 80 फ़ीसदी कोल इण्डिया लिमिटेड द्वारा किया जाता है और पिछले 4-5 सालों के दौरान कोयला उत्पादन में कोई ख़ास वृद्धि नहीं हुई है जबकि अर्थव्यवस्था में कोयले की माँग बढ़ी है। पूर्व कोयला सचिव अनिल स्वरूप ने सार्वजनिक रूप से यह बयान दिया कि कोल इण्डिया लिमिटेड की कार्यप्रणाली में मोदी सरकार की अनावश्यक दख़ल की वजह से इस प्रकार के संकट अवश्यम्भावी थे। उन्होंने बताया कि किस प्रकार कोल इण्डिया लिमिटेड द्वारा अर्जित मुनाफ़े का इस्तेमाल कोयले के उत्पादन को बढ़ाने के लिए करने की बजाय केन्द्र सरकार ने कोल इण्डिया लिमिटेड से भारी डिविडेण्ड लिया। इसके अलावा सरकार ने कोल इण्डिया लिमिटेड के मैनेजर को कोयले का उत्पादन बढ़ाने की योजना बनाने की बजाय 'स्वच्छ भारत अभियान' के तहत शौचालय बनवाने के काम में लगा दिया। स्वरूप ने कोल इण्डिया के कुप्रबन्धन का एक अन्य उदाहरण देते हुए बताया कि महीनों तक कई अहम पदों पर नियुक्ति नहीं होती है।

इसके अलावा केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच के आपसी तालमेल की कमी ने भी बिजली के इस संकट को बढ़ाने का काम किया। ग़ौरतलब है कि बिजली के वितरण की ज़िम्मेदारी मुख्य रूप से राज्य सरकारों के ज़िम्मे है जबकि बिजली के उत्पादन व संचरण की ज़िम्मेदारी मुख्य रूप से केन्द्र सरकार की है। एनटीपीसी जैसी बिजली का उत्पादन करने वाली कम्पनियाँ यह लम्बे समय से शिकायत करती रही हैं कि राज्य सरकारें सही समय से भुगतान नहीं करती हैं जिसकी वजह से बिजली के उत्पादन में बाधा उत्पन्न होती है। चूँकि राज्यों के बिजली बोर्ड लम्बे समय से घाटे में चल रहे हैं इसलिए वे समय से भुगतान नहीं कर पाते हैं। बिजली के उत्पादन-संचरण-वितरण की इस कड़ी में आयी अनियमितताओं को दूर करके बिजली के क्षेत्र की अनिश्चितता कम करने की बजाय केन्द्र व राज्य सरकारें एक-दूसरे पर दोषारोपण करने में जुटी रहती हैं। कई राज्यों में इस समस्या का समाधान बिजली के वितरण के निजीकरण के रूप में ढूँढ़ा जा रहा है। नवउदारवादी अर्थशास्त्री हर समस्या की ही तरह बिजली के संकट के समाधान के लिए भी कोयले और बिजली के क्षेत्र में निजीकरण की रफ़्तार बढ़ाने का सुझाव दे रहे हैं। लेकिन सच तो यह है कि निजीकरण से समस्या और जटिल ही होने वाली है क्योंकि मुनाफ़ा कमाने के जितने ज़्यादा क्षेत्र खुलेंगे, पूरी व्यवस्था की अराजकता उतनी ही बढ़ेगी। इसके अलावा आम बिजली उपभोक्ताओं को निजीकरण का ख़ामियाज़ा महँगी बिजली दरों के रूप में भुगतना पड़ेगा।

दीर्घकालिक रूप से देखा जाये तो बिजली व ऊर्जा के संकट का समाधान कोयला व पेट्रोलियम जैसे जीवाश्मीय ईंधन पर निर्भरता कम करके और ऊर्जा के अक्षय स्रोतों जैसे सौर ऊर्जा, वायु ऊर्जा, तरंग ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा, भू-तापीय ऊर्जा आदि पर ज़ोर बढ़ाकर ही किया जा सकता है। ऊर्जा के इन वैकल्पिक स्रोतों में अपार सम्भावनाएँ हैं। परन्तु पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्ध इन वैकल्पिक स्रोतों के विकास की राह में बाधा पैदा कर रहे हैं। इन वैकल्पिक स्रोतों से जुड़ी तकनीकों के विकास पर जितने निवेश की ज़रूरत है उतना नहीं किया जा रहा है क्योंकि इसमें तत्काल कोई मुनाफ़ा नहीं मिलने वाला है। मुनाफ़े की बजाय मनुष्यता की ज़रूरतों पर आधारित समाजवादी समाज में ही पूरे समाज की बिजली की ज़रूरत का सटीक मूल्यांकन करते हुए विभिन्न क़िस्म के ऊर्जा स्रोतों का न्यायसंगत विकास मुमकिन है जिससे ऊर्जा के संकट का समाधान आसानी से किया जा सकता है।

चीन का एवरग्रान्दे संकट : पूँजीवाद के मुनाफ़े की गिरती दर के संकट की अभिव्यक्ति

– अन्तरा घोष

चीन के रियल एस्टेट बाज़ार में पैदा हुआ हालिया संकट पूँजीवाद की बुनियादी समस्या यानी लाभप्रभता के संकट का ही लक्षण है। इससे चीन की राज्य-नियंत्रित अर्थव्यवस्था को 'कुछ विचलनों के साथ समाजवादी अर्थव्यवस्था', या 'किसी क़िस्म की संक्रमणशील अर्थव्यवस्था' होने के चलते इसे आर्थिक संकटों से मुक्त मानने वाली धारणा निर्णायक तौर पर ध्वस्त हो गयी है। चीन की प्रमुख रियल एस्टेट कम्पनी एवरग्रान्दे के साथ अन्य रियल एस्टेट कम्पनियों का ब्याज़ भर सकने और लाभांश दे सकने की अक्षमता के चलते दिवालिया होने ने यह सिद्ध किया है कि चीन एक पूँजीवादी देश ही है, जिसकी संशोधनवादी सामाजिक फ़ासीवादी क़िस्म की पूँजीवादी राज्यसत्ता के कारण अपनी एक विशिष्टता है।

मौजूदा संकट आम तौर पर चीनी अर्थव्यवस्था में और विशिष्ट तौर पर चीनी रियल एस्टेट सेक्टर में सट्टेबाज़ी के बुलबुले के फूटने के कारण पैदा हुआ है। पहला लक्षण चीन की सबसे बड़ी रियल एस्टेट कम्पनी एवरग्रान्दे के द्वारा उसकी नक़दी पर भारी दबाव, यानी देनदारी के संकट पैदा होने की सूचना देने के रूप में सामने आया। एवरग्रान्दे की मूल कम्पनी 3333 एचके के शेयर नीचे जाने शुरू हुए और कम्पनी के संस्थापक चेअरमैन ज़ू जियाइन ने चेअरमैन के पद से इस्तीफ़ा दे दिया। ब्याज़ भुगतान की अक्षमता के कारण दिवालिया होने के ख़तरे से रियल एस्टेट क्षेत्र पूरे चीनी बाज़ार का सरदर्द बन गया।

फ़ैन्तासिया होल्डिंग, साइनिक होल्डिंग, चाइना प्रोपर्टीज़ ग्रुप, आदि जैसी रियल एस्टेट कम्पनियों ने भी ब्याज़ देनदारियों का समय-सीमा में भुगतान कर पाने में अक्षमता ज़ाहिर की। चूँकि चीनी सम्पत्ति डेवलपर्स पूरे एशिया में सबसे ऊँची क़ीमतों के बॉण्ड बाज़ार में हिस्सेदार हैं इसलिए इस सेक्टर में दिवालियेपन की स्थिति एक दिवालियेपन की श्रृंखला को जन्म दे सकती है और पूरे विश्व बाज़ार को बर्बादी पर लाकर खड़ा कर सकती है।

उपरोक्त स्थिति बड़े स्तर पर चीनी सम्पत्ति बाज़ार में अनियंत्रित सट्टेबाज़ी का और उससे पैदा हुए वित्तीय बुलबुले का नतीजा है। इस सट्टेबाज़ी के उन्माद का क्या कारण है? वही जो हर जगह पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में होता है! मार्क्स ने डेढ़ सौ साल पहले ही बताया था कि यह "पूँजी का आधिक्य" ही होता है जिसे सट्टेबाज़ी में लगाया जाता है और "पूँजी का हर आधिक्य" वह आधिक्य है जिसे कम-से-कम मुनाफ़े की औसत दर पर निवेश नहीं किया जा सकता है। जब उत्पादक गतिविधि में निवेश में मुनाफ़ा नहीं मिलता तो पूँजीपति वर्ग उसे सट्टेबाज़ी में लगाकर आनन-फ़ानन में मुनाफ़ा कमाने का प्रयास करता है।

कई तथाकथित मार्क्सवादी अर्थशास्त्रियों जैसे कि डेविड हार्वी भी यह तर्क देते रहे हैं कि नवउदारवाद के पीछे एक कारण अति-वित्तीयकरण है, यानी सट्टेबाज़ी है। इस मूल्यांकन के चलते ही वे राज्य द्वारा वित्तीय क्षेत्र को नियंत्रित करने तथा श्रम और पूँजी के बीच एक नयी कल्याणकारी कीन्सवादी 'न्यू डील' के नुस्ख़े की वकालत करते हैं। हालाँकि वे यह नहीं समझ पाते कि सट्टेबाज़ी का उन्माद पूँजीपतियों की मनोगत इच्छा का नतीजा नहीं है। असल में यह उत्पादक क्षेत्र के मुनाफ़े के संकट का नतीजा है जिससे पूँजी का अति-संचय तथा आम तौर पर अतिउत्पादन पैदा होता है, जिसमें संकट का मुख्य कारण उत्पादन के साधनों का अतिउत्पादन होता है। इसी के नतीजे के तौर पर सट्टेबाज़ी पैदा होती है। दूसरे शब्दों में, सट्टेबाज़ी अपने आप में संकट को पैदा नहीं करती बल्कि वह स्वयं मुनाफ़े की गिरती दर के संकट का परिणाम होती है।

चीनी पूँजीवाद के संकट को रोकने के लिए ही चीनी संशोधनवादी राजकीय पूँजीपति वर्ग ने वित्तीय सेक्टर व रियल एस्टेट सेक्टर के विनियमन की शुरुआत पिछले वर्ष की थी। इसे देखकर ही तमाम "मार्क्सवादी" और ट्रॉत्स्कीपन्थियों ने इसे 'नियोजन की ओर वापसी', 'माओ की ओर वापसी', चीनी आर्थिक व्यवस्था में 'देंग से अधिक माओ को मिलाना' कहा। चीन की संशोधनवादी पार्टी और राज्य अन्य सामान्य पूँजीवादी राज्यों की तुलना में अपनी अधिक सापेक्षिक स्वायत्ता के चलते ही चीनी पूँजीपति वर्ग को तात्कालिक तौर पर अनुशासित कर पा रहा है जिसके ज़रिए वह पूँजीवादी संकट के लक्षणों को दबाने का प्रयास रहा है। लेकिन ऐसा भी वह तात्कालिक तौर पर ही कर सकता है, स्थायी तौर पर नहीं क्योंकि पूँजी की अपनी गति होती है।

यह संकट लम्बे समय से सतह के नीचे सुलग रहा था। इस साल के ही जून माह में चीनी रियल एस्टेट की कम्पनियों का इण्टेरस्ट कवरेज रेशियो बेहद कम हो चुका था। इण्टरेस्ट कवरेज रेशियो एक कम्पनी पर कर और ब्याज़ से पहले कुल आय का ब्याज़ सेवा देनदारी से अनुपात है। यानी ब्याज़ सेवा देनदारी बढ़ने पर यह अनुपात गिरता जाता है। यही गिरता अनुपात चीन की संशोधनवादी पार्टी को पूँजीवादी बीमारी के लक्षणों से वाक़िफ़ करा रहा था। इस कारण ही चीन की संशोधनवादी पार्टी ने निजी पूँजीपति वर्ग को अनुशासित करने का प्रयास किया जिसका एक उदाहरण अलीबाबा कम्पनी के मालिक और चीन के सबसे बड़े पूँजीपतियों में से एक जैक मा की 'पुनर्शिक्षा' थी, जो कुछ दिनों पहले चीनी राज्य द्वारा विनियमन और नियंत्रण की अवहेलना करने वाली बातें बोल रहे थे!

चीनी संकट का तात्कालिक कारण चीनी रियल एस्टेट कम्पनियों की सट्टेबाज़ बिक्री का आम रवैया था। यानी ये कम्पनियाँ उपभोक्ताओं को मकान बनने से पहले ही बेच देती थीं। इस राशि के इतर भी ये कम्पनियाँ तमाम वित्तीय उपकरणों को बेचकर भी पूँजी को जुटाती थीं। यह प्रक्रिया कुण्डलाकार गति में बढ़ती है और इस प्रक्रिया में ही सट्टेबाज़ी बढ़ती है और वित्तीय बुलबुला फूलता जाता है।

यह तबतक फूलता रहता है जबतक कि समाज में औसत आमदनी अच्छी होती है और अर्थव्यवस्था सापेक्षिक तौर पर बेहतर होती है, यानी मुनाफ़े की दर अभी कमोबेश स्वस्थ होती है। इस सट्टेबाज़ धोखाधड़ी की योजना को तब तक एक आर्थिक मॉडल के तौर पर सभी के द्वारा लागू भी किया जाता है। परन्तु लाभप्रभता के संकट का नियम एक प्राकृतिक नियम की तरह काम करता है और जब उसके परिणाम संकट के रूप में सामने आते हैं, तो ऊपर से स्वस्थ दिख रही अर्थव्यवस्था अचानक धड़ाम से औंधे मुँह गिरती है। मुनाफ़े की दर गिरती है, उत्पादक निवेश में कमी आती है, रोज़गार में कमी आती है, व्यापक जनता की औसत कमाई में कमी आती है, नक़द का प्रवाह रुकता है, आर्थिक संकट गहराता और सट्टेबाज़ी का बुलबुला फूट जाता है। चीन में भी ऐसा ही हुआ। नतीजतन, अकेले एवरग्रान्दे के ही 800 से अधिक अधूरे प्रोजेक्ट हैं और 12 लाख लोग अभी अपने सपने के मकान में प्रवेश करने का इन्तज़ार कर रहे हैं, क्योंकि जिस चार-सौ-बीस स्कीम ने उन्हें ये सपना बेचा था, उसका कबाड़ा निकल गया।

हमें यह भी समझना होगा कि रियल एस्टेट का बूम और उसमें सट्टेबाज़ी का उन्माद कैसे पैदा हुआ। चीनी संशोधनवादी पार्टी द्वारा चुने गये विकास के मॉडल में निजी पूँजी को लगातार ज़्यादा से ज़्यादा खुला हाथ दिया गया। पूँजीवादी पुनर्स्थापना के बाद 1978 में शुरू हुई इस प्रक्रिया को 1980 के मध्य में और 1990 के दशक में अभूतपूर्व संवेग प्राप्त हुआ। इस दौरान औद्योगिक विकास व शहरीकरण पर ज़ोर दिया गया। संशोधनवादी पार्टी ने पूँजीवादी आर्थिक नीतियों को लागू करने की प्रक्रिया में ही मज़दूर वर्ग और मेहनतकश किसानों को राजनीतिक तौर पर विसंगठित किया गया और मज़दूरों के सामूहिक किसानों के कम्यूनों व अन्य संस्थाओं के भंग होने के साथ ही उनके अधिकारों को भी छीना गया। मज़दूरों और आम जनता पर सामाजिक फ़ासीवादी नियंत्रण ने राजकीय और साथ ही निजी पूँजीवाद को छूट दी ताकि वह कार्यशक्ति का कुशल नियंत्रण कर सके तथा सस्ता श्रम लूट सके।

इस प्रकिया ने द्रुत और अराजक गति से शहरीकरण किया और एक बड़ी शहरी औद्योगिक कार्यशक्ति तथा ठीक-ठाक संख्या में मध्यवर्ग को निर्मित किया। 2011 तक शहरीकरण की दर 50 फ़ीसदी थी, जो कि पिछले साल बढ़कर 60 फ़ीसदी हो गयी। शहरीकरण ने रियल एस्टेट सेक्टर में मुनाफ़ा कमाने का मौक़ा दिया। चीनी राज्य ने भी इस सेक्टर के निजी पूँजीपतियों को खुला हाथ दिया। राजकीय आवास की व्यवस्था की जगह रियल एस्टेट पूँजीपतियों द्वारा निजी आवास का मॉडल खड़ा हुआ। इस तरह इस सेक्टर में बड़े स्तर पर सट्टेबाज़ निवेश हुआ। सट्टेबाज़ी के उन्माद में खाता-पीता मध्यवर्ग ही नहीं बल्कि निम्न मध्यवर्ग से लेकर कुशल मज़दूर वर्ग का एक हिस्सा तक शामिल है। वे मकानों को रहने के लिए नहीं बल्कि केवल आने वाले वक़्त में ऊँची क़ीमत पर बेचने के लिए ख़रीदते हैं यानी सट्टेबाज़ निवेश करते हैं। इस वजह से निर्मित हो रहे सट्टेबाज़ी के बुलबुले से चिन्तित होते हुए चीनी संशोधनवादियों के वर्तमान सरगना ज़ी जिनपिंग ने कहा कि 'मकान रहने के लिए हैं सट्टेबाज़ी के लिए नहीं'। हालाँकि यह चीनी संशोधनवादी पार्टी की ही नीतियों का नतीजा है कि इस सेक्टर में सट्टेबाज़ी शुरू हुई। ख़ुद चीनी संशोधनवादी पार्टी के नौकरशाहों ने सट्टेबाज़ी में जमकर भागीदारी की और नोट पीटे। स्थानीय सरकार और केन्द्रीय सरकार के अहलकार पूँजीवादी कम्पनियों को बेहद सस्ते दामों पर वाणिज्यिक ज़मीन मुहैया करवा रहे थे। इस कारण आवासीय सम्पत्ति की आपूर्ति कम हुई। इसे राज्य द्वारा भी सचेतन तौर पर कम रखा गया। नतीजतन, आवासीय सम्पत्ति की बेहद ऊँची क़ीमतों से न सिर्फ़ निजी पूँजी को बल्कि राजकीय पूँजीपति वर्ग को बेहद ऊँचा लाभ मिलता है। रियल एस्टेट सेक्टर चीनी अर्थव्यवस्था का 13 फ़ीसदी बनता है। यह 1995 में केवल 5 प्रतिशत था। स्थानीय सरकारों पर क़रीब 10,000 अरब डॉलर का ऋण था और निजी रियल एस्टेट के डेवेलपरों को ज़मीन की ऊँचे दामों पर सट्टेबाज़ बिकवाली उनके लिए ऋण का ब्याज़ चुकाने का प्रमुख स्रोत है। इस प्रकार सट्टेबाज़ी के बुलबुले के अचानक फूटने के साथ पूरी अर्थव्यवस्था ढलान पर जा सकती है।

ज़मीन की ऊँची क़ीमतों के चलते रियल एस्टेट डेवेलेपरों ने अधिक से अधिक ऋण लेकर अधिक से अधिक ज़मीनें बटोरीं। एवरग्रान्दे व अन्य रियल एस्टेट कम्पनियों ने उन्मादपूर्ण वित्तीय विस्तार के लिए न सिर्फ़ उपभेगताओं को मकान बनने से पहले बेचे बल्कि गिरवी बॉण्ड अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में भी बेचे। यह बिल्कुल 2007-2008 में अमरीकी सबप्राइम संकट का तात्कालिक कारण बने वित्तीय उपकरण 'कोलैटरल डेब ऑब्लिगेशन' की ही तरह था।

मुख्य सवाल यह है कि यह सट्टेबाज़ी का बुलबुला निर्मित ही क्यों हुआ? अपने आप में रियल एस्टेट बाज़ार में तेज़ी या बूम अनिवार्यत: सट्टेबाज़ी के बुलबुले को पैदा नहीं करती है या कहें कि इस आकार के बुलबुले को पैदा नहीं करती है। इसके पीछे कारण चीनी अर्थव्यवस्था में पूँजी के मुनाफ़े की दर का गिरना और श्रम की उत्पादकता का थमना था। श्रम की बढ़ती उत्पादकता गिरते मुनाफ़े की दर के संकट को केवल तात्कालिक तौर पर टाल सकती है, जबकि अतिरिक्त मूल्य की दर पूँजी के आवयविक संघटक के बढ़ने की दर से अधिक रफ़्तार से बढ़े। लेकिन ऐसा केवल तात्कालिक तौर पर कुछ समय के लिए सम्भव होता है और चीनी अर्थव्यवस्था में यह भी नहीं हो पाया क्योंकि उत्पादकता की दर ठहरी हुई है या घट रही है। वास्तव में, यह संकट चीनी उत्पादक अर्थव्यवस्था में मुनाफ़े की गिरती दर का संकट था जिसने आम तौर पर वित्तीय पूँजी के बुलबुले को और विशिष्ट तौर पर रियल एस्टेट क्षेत्र में वित्तीय पूँजी के बुलबुले को जन्म दिया, जिसे अन्तत: फूटना ही था और फिर इस संकट और भी ज़्यादा गम्भीर रूप में प्रकट होना ही था।

चीन की विकास की कहानी ख़ासतौर पर नयी सहस्राब्दी में रियल एस्टेट क्षेत्र में सट्टेबाज़ निवेश पर निर्भर थी। इस क्षेत्र की विकास दर 2000-01 में 8 प्रतिशत से 2020-21 तक जीडीपी का 20 प्रतिशत हो गयी। अगर हम इस क्षेत्र की गणना को हटा दें तो हम पायेंगे कि उत्पादक क्षेत्रों में और ख़ास तौर पर मैन्युफ़ैक्चरिंग में निवेश की दर घटती जा रही है। संकट का मूल कारण मुनाफ़े की गिरती दर का संकट ही था। यह मार्क्स के मुनाफ़े के दर के गिरने की प्रवृत्ति के नियम को ही एक बार फिर से सही सिद्ध करता है। मौजूदा संकट ने उन तमाम अहमकों के भ्रम को दूर कर दिया जो चीनी अर्थव्यवस्था को 'पूँजीवाद और समाजवाद के बीच संक्रमणशील अवस्था' बता रहे थे, जो कि संकट से मुक्त थी!

लेकिन एक कारक है जो चीनी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को अन्य पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं से अलग करता है और वह है एक संशोधनवादी सामाजिक फ़ासीवादी राज्यसत्ता और पार्टी की मौजूदगी। यह पूँजीवादी राज्य ही है परन्तु एक संशोधनवादी पूँजीवादी राज्य है जिसका चरित्र सामाजिक फ़ासीवादी है। यह इसे अन्य खुले तौर पर पूँजीवादी देशों से कुछ मायनों में अलग करता है। सभी बुर्जुआ राज्यों की पूँजीपति वर्ग से सापेक्षिक स्वायत्तता होती है क्योंकि पूँजीवादी राज्य का ही समूचे पूँजीपति वर्ग के सामान्य दीर्घकालिक वर्ग हितों का सामूहिकीकरण करना होता है। इसलिए बुर्जुआ राज्यसत्ता पूँजीपति वर्ग के किसी एक धड़े की कठपुतली नहीं होती, हालाँकि वह आम तौर पर बड़े पूँजीपति वर्ग के हितों को अक्सर प्राथमिकता देती है। हर पूँजीवादी राज्यसत्ता इस रूप में अलग-अलग मात्रा में वैयक्तिक पूँजीवादी हितों से स्वायत्तता रखती है ताकि समूचे पूँजीपति वर्ग के सामान्य दूरगामी हितों को संगठित कर सके। लेकिन संशोधनवादी पूँजीवादी राज्यसत्ता की सापेक्षिक स्वायत्ता इसके विशिष्ट इतिहास की वजह से और भी अधिक है। यह श्रम पर नियंत्रण के साथ-साथ पूँजी को भी अधिक कुशलता से अनुशासित करती है। चीनी संशोधनवादी राज्य की यह विशिष्टता व वैश्विक अर्थव्यवस्था में इसकी अवस्थिति इसे ऐसे संकट की स्थितियों से उभरने का तात्कालिक तौर पर ही सही, मगर कौशल प्रदान करती है। तात्कालिक तौर पर इसलिए क्योंकि श्रम के दमन और पूँजी को अनुशासित कर पाने के उन्नत कौशल ही इसके लिए गम्भीर सामाजिक और राजनीतिक संकट की ज़मीन भी तैयार करता है। ऐसे संकट का नतीजा कई सम्भावित रूप ले सकता है, जिसमें एक रूप सोवियत संघ के बिखरने का भी हो सकता है।

चीनी सामाजिक फ़ासीवादी राज्य इस संकट से अधिक कुशलता से निपट सकने की क्षमता का प्रतिबिम्बन चीनी अर्थव्यवस्था में कुल ऋण के बड़े हिस्से का आन्तरिक ऋण के रूप में मौजूद होने के रूप में भी होता है। यह आन्तरिक ऋण भिन्न स्थानीय सरकारों से लेकर राजकीय बैंकों व केन्द्रीय बैंकों का है। अगर हम इस ऋण को हटा दें तो कॉरपोरेट पूँजीवादी घरानों और तमाम लोगों पर ऋण अन्य उन्नत पूँजीवादी देशों के मुक़ाबले काफ़ी कम है। चीन पर डॉलर में बाह्य ऋण बेहद कम है। यह कुल जीडीपी का 15 प्रतिशत है। साथ ही वर्षों से निर्यात-आधारित विकास के मॉडल के चलते चीन विश्व का प्रमुख ऋणदाता है। दुनिया पर कुल ऋण का 6 प्रतिशत अकेले चीन का है। इस वजह से ही चीन का डॉलर और यूरो का भण्डार उसपर बाह्य त्रण से अधिक है। यह आर्थिक स्थिति भी

(पेज 2 पर जारी)

उत्तर प्रदेश समेत कई राज्यों के आगामी विधान सभा चुनाव

(पेज 16 से आगे)

अपनी असफलताओं को छुपाने और जनता का शोषण-उत्पीड़न जारी रखने के लिए इसका बेहद कुशलता से प्रयोग करते हैं। नवउदारवाद की नीतियों की वजह से पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था भी घोर संकट से गुज़र रही है। भारत की तरह पाकिस्तान में भी आम मेहनतकश जनता और मज़दूर वर्ग का ध्यान बेराज़गारी, ग़रीबी, भुखमरी, कुपोषण, स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास आदि से भटकाने के लिए सीमा विवाद, साम्प्रदायिक उन्माद और आतंकवाद चाहिए होता है।

कश्मीर के इतिहास और कश्मीर के मुद्दे पर हम बिगुल के पन्नों पर लिखते आये हैं क्योंकि कश्मीरी क़ौम के दुख-तकलीफ़ों को समझकर और उसके सही इतिहास से परिचित होकर ही भारत का सर्वहारा वर्ग कश्मीर के मुद्दे पर अपनी सही राय बना सकता है और उसके संघर्ष का हिस्सा बन सकता है। यह भारत के सर्वहारा वर्ग के लिए बेहद महत्वपूर्ण है क्योंकि किसी भी देश का सर्वहारा वर्ग यदि अपने देश के पूँजीपति हुक्मरानों द्वारा दमित क़ौमों के दमन-उत्पीड़न पर ख़ामोश रहता है तो वह अपने आप को भी पूँजीवादी ग़ुलामी से मुक्त नहीं कर सकता। सर्वहारा वर्ग की ख़ामोशी अन्धराष्ट्रवाद का मौन समर्थन होगा और देश की आम मेहनतकश आबादी उस ज़हरीली राजनीति के प्रभाव में रहेगी।

5 अगस्त 2019 को धारा 350 और 35-ए के हटाये जाने के बाद अमित शाह और मोदी कश्मीर में विरोध प्रदर्शनों के आँकड़ों से यह स्थापित करना चाह रहे हैं कि कश्मीरी क़ौम भारत में शामिल होना स्वीकार कर चुकी है। विरोध प्रदर्शनों का कम होना उनकी कसौटी है। वैसे तो इस सरकार के आँकड़ों पर कितना भरोसा किया जा सकता है हम सभी को पता है। धारा 370 और 35 ए हटाये जाने की घोषणा के साथ कश्मीर में दस लाख अतिरिक्त सेना की तैनाती कर दी गयी थी। वैसे ही कश्मीर विश्व में सेना की सबसे सघन उपस्थिति वाला भूभाग है। उसमें 10 लाख और सैनिक कश्मीर पहुँच गये। मोदी-शाह के तमाम झूठे दावों की सच्चाई यह है कि कश्मीरियों की बेलगाम गिरफ़्तारियाँ, झूठे एनकाउण्टर तो बदस्तूर जारी ही हैं साथ ही उन्हें नयी धमकियों और अन्याय का सामना करना पड़ रहा है। छोटे बच्चों तक को गिरफ़्तार किया जा रहा है। अक्टूबर महीने में अपने तीन दिन के दौरे पर गये अमित शाह ने "पत्थरबाज़ों" को सज़ा देने के लिए उनके पासपोर्ट नहीं जारी किये जाने के प्रावधान की घोषणा कर दी है। पत्थरबाज़ी या किसी आतंकवादी समूह से जुड़े होने के शक मात्र पर बिना किसी सबूत के लोगों को नौकरियों से निकाला जा रहा है। उन्हें अपना पक्ष रखने का मौक़ा देना तो दूर उनके बकाये पैसे भी नहीं दिये जा रहे हैं। लोग महीनों-महीनों से बिना नौकरी और वेतन के हैं। इस भयंकर तानाशाही, सेना के बूटों और बैरलों तले घोषणा की जा रही है कि सब कुछ शान्तिपूर्ण और सामान्य है। पूरा कश्मीर लम्बे समय से सेना की छावनी बना हुआ है और आज तो सभी कश्मीरी खुली जेल में क़ैद हैं। कश्मीरी जनता की यह ख़तरनाक स्थिति बद से बदतर हुई है। उनके लिए इस खौफ़नाक स्थिति, और सेना की ज़्यादतियों में कुछ नया नहीं है लेकिन ज़रूरत है भारत के मज़दूर और मेहनतकश वर्ग को इसे समझने और महसूस करने की। इतना तय है कि किसी भी क़ौम का दमन प्रतिरोध को अनिवार्य रूप से जन्म देता है। किसी भी दमित राष्ट्र के लोग राष्ट्रीय दमन के ख़िलाफ़ संघर्ष करते ही हैं; यदि वे जीतते नहीं तो उन्हें हराया भी नहीं जा सकता है। ऐसी सूरत में जिस भी दमित क़ौम में जो भी ताक़त क़ब्ज़ा करने वाली दमनकारी क़ौम के ख़िलाफ़ लड़ती दिखती है, जनता उसके पक्ष में जाती है। यदि राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में किसी प्रगतिशील शक्ति की मौजूदगी नहीं होती, तो जनता क्रान्तिकारियों द्वारा किसी प्रगतिशील विकल्प के निर्माण का इन्तज़ार नहीं करती। वह लड़ती है और उसके पास जो कुछ भी होता है उसके साथ लड़ती है। यही वजह है कि कश्मीर में क़ौमी दमन के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने वाली शक्तियों में शामिल धार्मिक कट्टरपन्थी शक्तियों का भी एक सामाजिक आधार है।

अफ़ग़ानिस्तान में तालिबान के आने के बाद कश्मीर में आतंकवादी गतिविधियों के बढ़ने की सम्भावना जतायी जा रही है। लश्कर-ए-तैयबा और जैश-ए-मोहम्मद जैसे तालिबान और पाकिस्तान-समर्थित आतंकवादी हमले बढ़ेंगे जो मोदी और इमरान ख़ान दोनों के हक़ में हैं। इन हमलों का अपने-अपने तरीक़े से हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के हुक्मरान इस्तेमाल करेंगे। लेकिन मोदी सरकार के आतंकवाद समाप्त होने के तमाम दावों के बावजूद और विशेषकर 5 अगस्त के बाद से कश्मीरी नौजवानों का आतंकवादी गतिविधियों में शामिल होना बढ़ा है। आतंकवादी गतिविधियों में मात्र बाहरी हाथ नहीं है, बल्कि वहाँ की स्थानीय नौजवान आबादी भारतीय राज्य के घनघोर दमन-उत्पीड़न की वजह से प्रतिक्रिया के तौर पर इन गतिविधियों में शामिल होती है। आतंकवाद नौजवानों की एक दिशाहीन प्रतिक्रिया है। आज इन नौजवानों को सही दिशा देने वाली राजनीतिक समझदारी और शक्ति की कमी है। गुपकार के नेताओं की कश्मीरी जनता में कोई साख नहीं बची है। चाहे नेशनल कॉन्फ्रेंस हो या पीडीपी इनकी धोखेबाज़ियाँ, भारतीय सत्ता के साथ समझौते और प्रेमालाप जगज़ाहिर हैं। इस गैंग के नेता चाहे 5 अगस्त को काले दिन का नाम दें या घोर विश्वासघात कहें लेकिन सच तो यह है कि इनके अनुसार धारा 370 को फिर से बहाल करने की माँग यथार्थवादी माँग नहीं है और इसलिए अब ये कश्मीर को राज्य का दर्जा दिलाने की माँग कर रहे हैं। इनसे कश्मीरी अवाम और नौजवानों को कोई उम्मीद नहीं है। लेकिन उनके पास विकल्पहीनता की स्थिति भी है और यही विकल्पहीनता उन्हें आतंकवाद की ओर धकेलती है।

कश्मीरी क़ौम के साथ हो रहे उत्पीड़न और अन्याय की बात जैसे ही होने लगती है, उसके बरक्स कश्मीरी पण्डितों के साथ हुई ज़्यादतियों को रखकर कश्मीरी अवाम के साथ हो रहे अन्याय के अस्तित्व को ही नकार दिया जाता है या उसे वैध ठहराया जाता है। कश्मीरी क़ौम बनाम कश्मीरी पण्डित का कुतर्क देश के धार्मिक ध्रुवीकरण में बड़ी भूमिका अदा करता है। सच्चाई यह है कि कश्मीरी क़ौम का मतलब केवल कश्मीरी मुसलमान नहीं हैं, बल्कि कश्मीरी पण्डित भी हैं, जिनकी भाषा, संस्कृति, इतिहास और सामाजिक मनोविज्ञान साझा रहे हैं। कश्मीरी क़ौम के आत्मनिर्णय की बात करने वाली या उनसे संवेदना रखने वाली इन्साफ़पसन्द भारतीय आबादी पर कश्मीरी पण्डितों के साथ हुई ज़्यादती पर चुप रहने का आरोप लगाया जाता है। 1990-92 के दौरान 399 कश्मीरी पण्डितों की जान गयी जो बेहद दुर्भाग्यपूर्ण है। राजीव गाँधी की सरकार ने 1987 में कश्मीर विधानसभा चुनावों में धाँधली की जिसके नतीजे के तौर पर कश्मीरी अवाम ख़ासकर कश्मीरी नौजवानों में भारत सरकार और उसके कथित लोकतांत्रिक रवैये को लेकर मोहभंग हुआ और उनका झुकाव आतंकवाद की ओर बढ़ा, हालाँकि कश्मीरी क़ौम के साथ भारत के पूँजीपति वर्ग का विश्वासघात 1950 के दशक से यानी नेहरू काल में ही शुरू हो गया था। यही वह दौर था जब भारत में मन्दिर-मस्जिद विवाद खड़ा कर संघ परिवार और भाजपा धार्मिक ध्रुवीकरण और साम्प्रदायिकता की आग फैला रहे थे। केन्द्र में वी.पी. सिंह की गठबन्धन सरकार थी जिसे भाजपा और संसदीय वाम दलों दोनों का ही समर्थन प्राप्त था। जगमोहन के मुस्लिम-विरोधी चरित्र को जानते हुए भी वी. पी. सिंह ने जगमोहन को कश्मीर का गवर्नर नियुक्त किया। जगमोहन पर कश्मीर घाटी में मुसलमान-विरोधी राजनीति को हवा देने और कश्मीरी पण्डितों को कश्मीर छोड़ने में प्रोत्साहित करने का आरोप लगाया जाता है। अटल विहारी वाजपेयी की सरकार के समय कश्मीर में जगमोहन के कामों को देखते हुए यह आरोप बिल्कुल सही लगते हैं। 1990 की घटना कश्मीरी क़ौम और भारत सरकार के बीच तीखे होते अन्तरविरोध और कश्मीर के राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में धार्मिक कट्टरपन्थी शक्तियों के हावी होने का नतीजा था। कश्मीर के शासन-प्रशासन पर और साथ ही वहाँ की अर्थव्यवस्था व शिक्षा आदि के क्षेत्र में भी ऐतिहासिक तौर पर कश्मीरी पण्डितों का प्रभुत्व रहा था, जिसका इन धार्मिक कट्टरपन्थियों ने इस्तेमाल भी किया, क्योंकि एक वर्गीय अन्तरविरोध को उन्हें ग़लत तरीक़े से पेश करने का अवसर मिला। भारतीय सत्ता के विश्वासघात से पैदा हुआ क्रोध राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में धार्मिक कट्टरपन्थ के हावी होने के बाद कश्मीरी पण्डितों की ओर निर्देशित करने में इन शक्तियों को सफलता मिली। लेकिन इस राजनीतिक अन्तरविरोध को हिन्दूवादी प्रस्थान बिन्दु से धार्मिक रंग देने का काम जगमोहन ने किया। जगमोहन की इस कुटिल साम्प्रदायिक राजनीति के मौन समर्थकों में तत्कालीन सरकार में शामिल लाल कलँगी वाले वाम दलाल भी शामिल थे।

1990 तक कश्मीर में लगभग 75,000 कश्मीरी पण्डितों की आबादी थी जिनमें से 70,000 कश्मीरी पण्डित 1990 से 1992 तक कश्मीर छोड़ चुके थे। 2000 तक कश्मीर से बाहर जाने का सिलसिला जारी रहा। आज वहाँ 800 परिवार बचे हैं जो 1990 से वहाँ हैं। इस विस्थापित आबादी के अधिकांश हिस्से को भारत सरकार ने देश के विभिन्न हिस्सों में बसाया, नौकरियाँ दीं और सामाजिक सुरक्षा प्रदान की। इस आबादी का बहुलांश अच्छा खाता-पीता मध्यवर्ग है जो सुरक्षित ज़िन्दगी जीता है। इस भारी आबादी के लिए कश्मीर-वापसी यथार्थ से ज़्यादा एक रूमानी विचार है। अच्छी नौकरीशुदा सुरक्षित ज़िन्दगी छोड़कर ये वापस नहीं जाना चाहते हैं। बस अनुपम खेर जैसे लोग भाजपा के धार्मिक ध्रुवीकरण को तीव्र करने के लिए बन्दर नाच करते रहते हैं और इस आबादी को वोट बैंक की तरह इस्तेमाल करते हैं। केन्द्र में भाजपा सरकार के आने के बाद और उसके पहले भी तमाम प्रयासों व सरकारी नौकरियाँ दिये जाने के बावजूद आँकड़े बताते हैं कि मात्र 3000 के लगभग आबादी कश्मीर वापस गयी है।

अभी कश्मीर उन लोगों का है जो वहाँ सदियों से जीते चले आये हैं और आज भी जी रहे हैं। इस आबादी में चाहे कश्मीरी पण्डित हों, मुसलमान हों या फिर सिख। अपने भविष्य का निर्णय यह आबादी स्वयं करेगी। उसके इस आत्मनिर्णय के अधिकार को अन्धराष्ट्रवाद और साम्प्रदायिक उन्माद की लहर के तले दबाया नहीं जा सकता। इस तरह के उन्मादी राजनीतिक प्रचार को किनारे कर मज़दूरों-मेहनकशों को कश्मीर का असली इतिहास जानना समझना चाहिए। पाकिस्तान-समर्थित क़बायली हमलों के दौरान 1947 से लेकर 1949 के बेहद उथल-पुथल के दौर में कश्मीर अपनी शर्तों पर भारतीय संघ में शामिल हुआ था। कश्मीर इस शर्त पर भारतीय संघ में शामिल हुआ कि विदेशी मसलों, सुरक्षा और मुद्रा चलन के अतिरिक्त भारतीय राज्य कश्मीर की स्वायत्तता को बरक़रार रखेगा और अन्य सभी मसलों पर निर्णय लेने की शक्ति कश्मीर की सरकार के हाथ में होगी। इसके लिए भारतीय संविधान में विशेष धारा 370 को शामिल किया गया। नेहरू ने कश्मीर में स्थिति सामान्य होने पर जनमत संग्रह का वायदा किया था जिसमें कश्मीर की जनता को अपने भविष्य का फ़ैसला करना था। लेकिन कभी वह जनमत संग्रह नहीं हुआ और तब से लेकर अब तक कश्मीरी क़ौम को भारत सरकार से विश्वासघात, हिंसा, दमन और उत्पीड़न के सिवा और कुछ हासिल नहीं हुआ है। आज जब इस वायदे की याद भारतीय सत्ता को दिलायी जाती है तो वह कश्मीरी जनता को 'एहसान फ़रामोश' और आतंकवादी कहती है। भारत की मज़दूर-मेहनतकश आबादी को जानना चाहिए कि पिछले डेढ़ दशक में सेना के हाथों 60,000 कश्मीरियों ने अपनी जान गँवायी है, 7,000 से अधिक लापता हैं। अनगिनत बेनाम सामूहिक क़ब्रें मिली हैं जिनमें न जाने कितनी माँओं की सन्तानें दफ़्न हैं। इन क़ब्रों में सोये लोगों की माँओं की पथरायी आँखें चौखट पर टिकी उनके लौटने का इन्तज़ार कर रही हैं। अनगिनत औरतों का अपहरण और बलात्कार हुआ है, पेलेट गन के छर्रे कितने मासूमों को अन्धा बना चुके हैं। क्या इसे भारत राज्य द्वारा प्रायोजित आतंकवाद नहीं कहा जाना चाहिए? इस राज्य-प्रायोजित आतंकवाद की प्रतिक्रिया में और राजनीतिक विकल्पहीनता की स्थिति में कश्मीर में आतंकवाद की विभिन्न धाराओं में नौजवान शामिल हो रहे हैं। हमें यह समझना होगा कि पाकिस्तान और तालिबान-समर्थित आतंकवाद के अलावा कश्मीर की घाटी में आतंकवादी गतिविधियाँ सत्ता-प्रायोजित आतंकवाद की प्रतिक्रिया ही हैं। बिना राज्य-प्रायोजित आतंक के जनता का कोई भी हिस्सा कभी आतंकवाद की ओर आकर्षित नहीं होता है।

भारत के मज़दूर मेहनतकश वर्ग को यह समझना होगा कि साम्प्रदायिक फ़ासीवादी भाजपा का आक्रामक अन्धराष्ट्रवाद आज बड़ी इज़ारेदार पूँजी की सेवा में लगा हुआ है। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान की आपसी लड़ाई अँग्रेज़ों से विरासत में मिली है और आज यह दोनों देशों के पूँजीपति वर्ग के हित साधने की नीति के तौर पर भरपूर इस्तेमाल की जा रही है। ये मुद्दे जनता का रोज़गार, स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास जैसे मूल मुद्दों से ध्यान भटकाने और सरकार की नाकामियों को छुपाने का बेहद कारगर उपाय साबित होते हैं। दोनों देश के पूँजीपतियों की प्रतिस्पर्धा आपसी हितों के टकराव की वजह से होती है, लेकिन सबसे पहले ये अपने-अपने देश की आम मेहनतकश आबादी के शोषक, उनके दुश्मन हैं। यही आम मेहनकश आबादी इनकी फ़ैक्टरियों, कल-कारख़ानों, गोदामों और खेतों में खटती है और उसके ही बेटे-बेटियाँ सीमा पर हमलों व युद्ध में मारे जाते हैं। हमें समझना होगा कि हमारे असली दुश्मन हमारी बेरोज़गारी, शोषण, उत्पीड़न, बदहाली की ज़िम्मेदार हमारे देश का पूँजीपति वर्ग और उसकी सत्ता है और यही वर्ग कश्मीरी क़ौम के उत्पीड़न और दमन के लिए भी ज़िम्मेदार है। इसके इस दमन और उत्पीड़न का समर्थन पूँजीपति वर्ग की राजनीति का समर्थन होगा। इसलिए अन्धराष्ट्रवाद की राजनीति के पीछे छिपे असली चेहरे को समझने की ज़रूरत है। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान दोनों ही देशों में मज़दूर-मेहनतकश वर्ग देशी-विदेशी पूँजी द्वारा शोषित-उत्पीड़ित हैं। एक देश के मज़दूर वर्ग का दूसरे देश के मज़दूर वर्ग से हितों का कोई टकराव नहीं होता। अगर हम इस बात को समझ लें तो हम इनके झाँसें में नहीं आयेंगे और अपनी एकता के बल पर अपने हक़ों के संघर्ष को ज़्यादा प्रभावी बना पायेंगे। रही बात कश्मीर की तो कश्मीर काग़ज़ पर बना कोई नक़्शा या मुकुट नहीं। कश्मीर सबसे पहले वहाँ रहने वाले कश्मीरियों का है। मज़दूर वर्ग इन्साफ़पसन्द होता है और दमित राष्ट्रों के आत्मनिर्णय और दमित राष्ट्रीयताओं के जनवादी अधिकार का पूरा समर्थन करता है। इसलिए भारत के मज़दूर वर्ग को कश्मीरी क़ौम के आत्मनिर्णय के अधिकार का पुरज़ोर समर्थन करना चाहिए।

क्यूबा में साम्राज्यवादी दख़ल का विरोध करो!

– सनी

जुलाई से ही क्यूबा में विपक्ष के नेताओं के आह्वान पर हज़ारों लोगों के सड़कों पर उतरने की ख़बरें आ रही हैं। बिजली कटौती, खाद्य सामग्री का महँगा होना व कोरोना के नये संस्करण के चलते बीमारी का फैलना प्रमुख कारण थे जिनके ख़िलाफ़ आम जनता में रोष है। परन्तु जब इसके साथ ही अमेरिका के सारे मीडिया चैनल और अख़बार 'क्यूबा की मदद करो' और इन आन्दोलनों को 'जनवाद की बहाली' बताने का आन्दोलन बताने लगते हैं तो समझ में आता है कि दाल में कुछ काला है! जब भी साम्राज्यवादी हत्यारा अमेरिका कहीं जनवाद बहाली और मानवता के नाते हस्तक्षेप करने की बात करने लगे तो हिरोशिमा, इराक़, अफ़ग़ानिस्तान से लेकर अफ़्रीका और लातिन अमेरिका, कोरिया और उन दर्जनों मुल्कों के उन लोगों के चेहरे सामने आ जाते हैं जिनकी हत्या साम्राज्यवादी अमेरिका कर चुका है। अफ़ग़ानिस्तान को तबाही के कगार पर पहुँचाकर अमेरिका अफ़ग़ानिस्तान से सैन्य ख़र्चे के नुक़सान न उठा पाने की क्षमता के चलते भाग खड़ा हुआ है। वहीं क्यूबा में मानवीय हस्तक्षेप की बात करने वाली साम्राज्यवादी अमेरिकी सरकार ने क्यूबाई क्रान्ति के बाद से ही क्यूबा पर कई प्रतिबन्ध थोपे हुए हैं और वहाँ की लोकप्रिय जनपक्षधर सत्ता को गिराने की भी दर्जनों गुप्त व खुली कोशिशें की हैं। क्यूबा का गला घोंटकर अमेरिका ऐसी परिस्थिति पैदा करना चाहता है कि वह क्यूबाई सरकार को उखाड़ सके। हालाँकि पिछले साठ सालों में उसे सफलता नहीं मिली है।

आर्थिक घेराबन्दी के चलते ही क्यूबा की अर्थव्यस्था आज संकट से जूझ रही है। दूसरी ओर, क्यूबा का विपक्षी नेता अमेरिकापरस्त है। यह लातिन अमेरिका में अमेरिकी प्रयोगों की ही याद दिलाता है। लगभग 60 सालों से अमेरिका को उसके ही पिछवाड़े में चुनौती देता क्यूबा चुभता रहा है। निश्चित ही क्यूबा समाजवादी देश नहीं है और बल्कि समाजवाद के प्रति रुझान रखने वाली नीतियों वाला राजकीय पूँजीवाद का कल्याणकारी मॉडल है, जो कि साम्राज्यवाद-विरोधी है और क्यूबाई जनता के बीच अमेरिका साम्राज्यवाद के विरुद्ध बेपनाह नफ़रत के बूते टिका हुआ है। लेकिन अपने आन्तरिक अन्तरविरोधों और साथ ही वैश्विक अर्थव्यवस्था के डगमगाने और साम्राज्यवादी दबाव के कारण वह इस समय संकट में है।

क्यूबा में बढ़ती महँगाई और बढ़ती असमानता

क्यूबा में कोविड के कारण गहराये आर्थिक संकट का गहरा असर पड़ा है। अमेरिका की आर्थिक पाबन्दियों को झेल रहा क्यूबा कोविड काल में अर्थव्यवस्था को लगे धक्के में लड़खड़ा गया। पर्यटन का सेक्टर क्यूबा में बड़ा सेक्टर है परन्तु कोविड के कारण यह पूरी तरह से बन्द है। आवश्यक वस्तुओं के दाम आसमान छू रहे हैं। वहीं एक आबादी इस सबके बावजूद अमेरिका में परिवारों द्वारा भेजे गये डॉलरों की वजह से बेहतर स्थिति में है। प्रदर्शनों में ऐसे अमेरिकी आयातित डॉलरों से क्यूबा की एक आबादी द्वारा बनाये "डॉलर स्टोर" भी निशाने पर आये जो कि सामाजिक असमानता के ख़िलाफ़ जनता का ग़ुस्सा ज़ाहिर करता है। महँगाई, बेरोज़गारी और हर दिन 6-6 घण्टे बिजली की कटौती के कारण ही जनता के एक हिस्से में रोष व्याप्त था।

सेन एण्टानियो दे लोस बानोस से शुरू हुए प्रदर्शन हवाना से लेकर अन्य शहरों में फैल गये। इन प्रदर्शनों के पीछे कोविड काल में पैदा हुई समस्याओं को क्यूबा के राष्ट्रपति ने स्वीकार किया है। 1994 में आर्थिक संकट के कारण क्यूबा में जनता ने व्यापक प्रदर्शन किये थे जिन्हें फ़िदेल कास्त्रो ने जनता के बीच उतरकर क़ाबू किया था। अमेरिका-परस्त विपक्षी नेता लूइस मैनूएल ओतेरा के नेतृत्व में भी कई लोग सड़कों पर उतर पड़े। कई गर्वनरों ने क्यूबा में सैन्य हस्तक्षेप के लिए माहौल बनाया। क्यूबा में मौजूदा आन्दोलन और उसमें अमेरिका-परस्त राजनीतिक शक्तियों के दख़ल को समझने के लिए हमें क्यूबा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से परिचित होना बेहतर होगा।

लातिन अमेरिका में क्यूबा सबसे अन्त में आज़ाद हुआ था और उसके बाद भी अमेरिकापरस्त सरकारें वहाँ सत्ता में बैठती रहीं। क्यूबा में अमेरिका-परस्त तानाशाह बतिस्ता के ख़िलाफ़ क्रान्ति का नेतृत्व फ़िदेल कास्त्रो, चे ग्वेरा व अन्य क्रान्तिकारी नेताओं ने किया। समूचे लातिन अमेरिका की ही तरह क्यूबा की जनता में ज़बर्दस्त साम्राज्यवाद-विरोधी भावना मौजूद रही है। क्यूबा में बतिस्ता की अमेरिका-परस्त तानाशाह सरकार के ख़िलाफ़ जनता में ग़ुस्सा मौजूद था। 1953 में 26 जुलाई आन्दोलन से शुरू हुई बग़ावत 1959 की क्रान्ति में परिणत हुई। क्रान्ति के बाद फ़िदेल कास्त्रो और चे ग्वेरा ने 1961 में 'बे ऑफ़ पिग्स' जनता को हथियारबन्द कर संघर्ष किया और साम्राज्यवादी हस्तक्षेप का मुँहतोड़ जवाब दिया। सामाजिक साम्राज्यवादी सोवियत रूस ने क्यूबा को शीत युद्ध में रणनीतिक संश्रय में शामिल किया। 1965 में क्यूबा में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई और तत्कालीन सरकार ने समाजवादी संक्रमण की ओर बढ़ने का आह्वान किया। परन्तु कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी-लेनिनवादी नहीं थी बल्कि व्यवहारवादी थी और विचारधारात्मक तौर पर कहें तो संशोधनवादी थी। इतिहास के ख़ास दौर और ख़ास परिस्थितियों में अस्तित्व में आयी यह व्यवस्था समाजवाद की ओर झुकाव वाली कल्याणकारी राज्य व्यवस्था थी।

क्यूबा की सरकार ने चीनी पर निर्भरता को ख़त्म कर अपनी अर्थव्यवस्था को वैविध्यपूर्ण बनाने का प्रयास किया परन्तु यह सीमित संसाधनों की वजह से बेहद मुश्किल था। 1990 तक क्यूबा को अमेरिका के आर्थिक प्रतिबन्धों को वहन कर पाने में सोवियत संघ की मदद मिलती रही। मसलन तेल के लिए क्यूबा सोवियत संघ पर ही निर्भर था व चीनी की बिक्री भी मुख्यत: सोवियत रूस को ही होती रही। परन्तु सोवियत संघ के बिखरने के बाद तेल के लिए क्यूबा को ख़ुद ही नये इन्तज़ाम करने थे। 1994 में शुरू हुए विरोध का कारण भी आर्थिक संकट ही था जिसे क्यूबा ने अपनी अर्थव्यवस्था को अधिक खुला करके पूरा किया। ऐतिहासिक परिस्थितियों की विशिष्टता के चलते ही क्यूबा में राजकीय फ़ार्म व राज्य के नियंत्रण में चल रही फ़ैक्टरियाँ अस्तित्व में आयीं। यह विशेष क़िस्म का कल्याणकारी मॉडल था जो कि केवल उस काल में ही अस्तित्व में आ सकता था। इसके पीछे एक साम्राज्यवादी-विरोधी और समाजवाद के प्रति रुझान रखने वाली पार्टी का होना, साम्राज्यवाद के विरुद्ध जनता के भीतर गहरी घृणा की मौजूदगी, और अन्तरराष्ट्रीय राजनीतिक समीकरणों की एक अहम भूमिका थी। पार्टी का नेतृत्व ईमानदारी के बावजूद मार्क्सवाद-लेनिनवाद की सैद्धान्तिकी से दूर था। यही कारण था कि जब सोवियत संघ ख्रुश्चेव के नेतृत्व में संशोधनवाद की राह पर चल पड़ा और 'महान बहस' के दौरान माओ के नेतृत्व में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने उसके संशोधनवाद की कठोर आलोचना पेश की, तो क्यूबा की पार्टी ने सोवियत संघ की संशोधनवादी पार्टी का पक्ष लिया। समाजवादी निर्माण के विषय में सही मार्क्सवादी समझदारी और समाजवादी समाज के दौरान जारी वर्ग संघर्ष के विषय में उसकी कोई सुसंगत समझदारी नहीं थी और विचारधारात्मक व राजनीतिक तौर पर उसके संशोधनवाद के कारण उसमें हो भी नहीं सकती थी। कुछ दशकों में ही क्यूबा में खुले पूँजीवाद की पुर्नस्थापना आन्तरिक तौर पर होने लगी। सोवियत यूनियन के पतन के साथ ही क्यूबा का अल्पजीवी अनोखा प्रयोग और तेज़ी से बिखरने लगा। यह सच है कि क्यूबा के समाजवाद के प्रति रुझान रखने वाले कल्याणकारी राजकीय पूँजीवाद के मॉडल के टिक पाने में कई वस्तुगत बाधाएँ थीं। लेकिन यह भी सच है कि इन परिस्थितियों में कोई क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी ही इन बाधाओं से सही तरीक़े से निपट सकती थी, जिसके पास एक सही वैज्ञानिक समझदारी हो और एक क्रान्तिकारी जनदिशा हो। लेकिन क्यूबा की कम्युनिस्ट पार्टी शुरू से ही विचारधारात्मक तौर पर कमज़ोर थी और संशोधनवाद (यानी नाम से समाजवादी लेकिन असल में पूँजीवादी) के साथ जुड़ गयी थी।

1990 के बाद से ही डॉलर के निर्यात को क्यूबा में इजाज़त मिली व निजी सम्पत्ति की इजाज़त भी मिली। मुख्य रूप से अमेरिका में रह रहे प्रवासी क्यूबाई लोगों द्वारा क्यूबा में रह रहे रिश्तेदारों को पैसा भेज निवेश किया गया जिससे अन्तत: पूँजीवादी सम्बन्धों का विकास हुआ और आर्थिक असमानता बढ़ी। विश्व बाज़ार के लिए दवा क्षेत्र में अनुसन्धान और कृषि में ऑर्गेनिक फ़ार्मिंग का कार्य किया जा रहा था। नयी सहस्राब्दि के शुरू होने के बाद बराक ओबामा और राउल कास्त्रो की मुलाकात क्यूबा के साम्राज्यवादी अमेरिका के साथ सम्बन्धों को सुधारने व अर्थव्यवस्था को और अधिक खुला करने की तरफ़ बढ़ा हुआ क़दम था। 2018 के अन्त में सरकार ने उत्पादन के साधनों का निजीकरण करने का बड़ा क़दम उठाया। विशिष्ट परिस्थितियों में पैदा हुआ समाजवादी तत्वों वाला कल्याणकारी क्यूबन मॉडल खुले पूँजीवाद के रूप में धीरे-धीरे परिवर्तित हो रहा था। यह प्रक्रिया 1990 में सोवियत रूस के विघटन के बाद बेहद तेज़ी से आगे बढ़ी। इक्कीसवीं सदी में आते-आते क्यूबा की अर्थव्यवस्था काफ़ी खुल चुकी थी और देश में शासन करने वाली नौकरशाह बुर्जुआज़ी के बरक्स अमेरिका-परस्त पूँजीपति वर्ग का धड़ा पैदा हुआ है। 1990 के बाद से ही बाज़ार के लिए धीरे-धीरे खुलती अर्थव्यवस्था तेज़ी से निजीकरण की ओर अग्रसर है। 2018 के अन्त में ही क्यूबा ने निजीकरण की तरफ़ क़दम और आगे बढ़ाये थे जिसके अर्न्तगत राजकीय कम्पनियों को भी निजी हाथों में बेचने की छूट मिल गयी है। क्यूबा के समाजवाद के प्रति रुझान रखने वाले कल्याणकारी राजकीय पूँजीवाद के मॉडल की इस नियति का कारण वस्तुगत बाधाओं और चुनौतियों के बावजूद मुख्य रूप से वहाँ की राज्यसत्ता में क़ाबिज़ पार्टी का राजनीतिक और विचारधारात्मक चरित्र है। यह पार्टी अपने साम्राज्यवाद-विरोध के बावजूद शुरू से ही सच्चे मायनों में कोई मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी नहीं रही है, बल्कि विचारधारात्मक रूप से बेहद कमज़ोर संशोधनवादी पार्टी रही है।

वैश्विक अर्थव्यवस्था में जुड़ चुकी क्यूबा की अर्थव्यवस्था भी कोविड संकट के कारण गहराये वैश्विक आर्थिक संकट में डांवाडोल हो गयी। परन्तु इस सबके बावजूद क्यूबा की सरकार अमेरिकी साम्राज्यवाद को चुनौती देती रही है। अमेरिका ने आर्थिक-सामरिक-राजनीतिक तरीक़ों से क्यूबा की स्वतंत्र जनता को अपने मातहत करने की बार-बार नाकाम कोशिश की है। भले ही क्यूबा में कम्युनिस्ट सत्ता और सही मायने में समाजवादी व्यवस्था मौजूद नहीं है लेकिन क्यूबा में अभी भी जनता की क्रान्तिकारी ऊर्जा के बूते किये गये क्रान्तिकारी प्रयोगों के अवशेष बचे हैं। लोगों के पास अन्य देशों के मुक़ाबले अधिक जनवादी अधिकार हासिल हैं और साम्राज्यवाद के प्रति उनकी नफ़रत आज भी उतनी ही गहरी है जितनी कि हमेशा से रही है।

अमेरिका ने हर हमेशा क्यूबा की साम्राज्यवाद-विरोधी सरकार को कुचलने की कोशिश की है। सीआईए ने फ़िदेल कास्त्रो को अनेक बार मारने का प्रयास किया। हर बार किसी अमेरिका-परस्त नेता को 'तानाशाही के ख़िलाफ़' और कम्युनिज़्म विरोध के नारों के साथ पश्चिमी मीडिया में मदद मिलती रही है। मौजूदा विरोध में भी 'मातृभूमि और ज़िन्दगी', 'कम्युनिज़्म मुर्दाबाद' तथा 'तानाशाही मुर्दाबाद' के नारे मूलत: क्यूबा के विपक्षी नेता के समूह द्वारा उछाले गये। मौजूदा प्रदर्शन में आम मेहनतकश जनता के रोष का इस्तेमाल अमेरिकापरस्त विपक्ष द्वारा किया जा रहा है। 'क्यूबा की आज़ादी' और अमेरिका से दख़ल की माँग के ख़िलाफ़ क्यूबा की सत्तारूढ़ पार्टी ने भी अपने देश की व्यवस्था को बचाने का आह्वान किया है। साम्राज्यवादी अमेरिका ने इसपर क्यूबा की सरकार की आलोचना की है कि जनता को विरोध प्रदर्शन करने का हक़ है! यह वही अमेरिका है जिसने ढाई सौ से भी ज़्यादा वर्षों से अपने देश में काले लोगों, प्रवासियों, मज़दूरों व ग़रीब श्वेत लोगों तक को बुनियादी जनवादी अधिकारों तक से वंचित रखा है! अमेरिका के तमाम पूँजीवादी राजनीतिज्ञों ने बाइडेन से समूचे लातिन अमेरिका पर अमेरिका के साम्राज्यवादी नियंत्रण की बात करने वाले 'मुनरो सिद्धान्त' को फिर से लागू करने की माँग उठाते हुए क्यूबा में अमेरिकी हस्तक्षेप करने की माँग की है। कई नेता तो अमेरिका द्वारा क्यूबा को नेस्तनाबूद करने तक की माँग उठा रहे हैं!

मज़दूरों का पक्ष

हम मज़दूरों का इसमें क्या पक्ष हो? निश्चित ही आज क्यूबा में सही मायने में एक क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग का हिरावल सत्ता में नहीं है। परन्तु आज क्यूबा में जो हो रहा है वह केवल आन्तरिक वर्ग संघर्ष का नतीजा नहीं है बल्कि अमेरिकी साम्राज्यवादी हस्तक्षेप की वजह से भी है। क्यूबाई आम मेहनतकश जनता के अपनी सरकार के विरोध करने और प्रदर्शन करने के हक़ का समर्थन करते हुए हमें अमेरिकी और किसी भी साम्राज्यवादी हस्तक्षेप का विरोध करना होगा। हमें क्यूबा के भीतर जारी वर्ग संघर्ष में किसी भी साम्राज्यवादी हस्तक्षेप का विरोध करना चाहिए। क्यूबा में समाजवाद की ओर रुझान रखने वाले कल्याणकारी राजकीय पूँजीवाद के आन्तरिक संकट का जो भी नतीजा हो, क्यूबाई पार्टी की जो भी विचारधारात्मक व राजनीतिक कमज़ोरियाँ हों, यह किसी भी साम्राज्यवादी शक्ति को क्यूबा में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं देतीं और हम मज़दूरों को इस प्रकार के किसी भी हस्तक्षेप का पुरज़ोर विरोध करना चाहिए।

उन्नीस सौ सत्रह, सात नवम्बर

– नाज़िम हिकमत

मर रहा है रूसी साम्राज्य
शीत प्रसाद में सुनायी नहीं देती लहँगों की रेशमी सरसराहट
और न ही ज़ार की ईस्टर की प्रार्थनाएँ,
न ही साइबेरिया की ओर जाती सड़कों पर ज़ंजीरों का क्रन्दन...
मर रहा है, रूसी साम्राज्य मर रहा है...
अब और नहीं भीगेंगी पोमेचिकों की पीली मूँछें
वोदका के गिलासों में
भूख से मरते मुझिकों की ताँबई दाढ़ियाँ
अब और नहीं जलेंगी
काली मिट्टी पर चुल्लू भर रक्त की तरह
और आज
मौत
जो बढ़ रही है रूसी साम्राज्य की ओर
नहीं है उसका पीला सिर
पाँचा नहीं बल्कि
उसके हाथों में है एक ओजस्वी लाल झण्डा
और उसके गालों पर युवापन की रक्ताभा

उन्नीस सौ सत्रह
सात नवम्बर
अपने धीर-मन्द्र स्वर में
लेनिन ने कहा:
"कल बहुत जल्दी होता है और कल बहुत देर हो चुकी रहेगी,
समय है आज।"
मोर्चे से आते हुए सैनिक ने
कहा, "आज!"
खन्दक जिसने मार डाला था भूख से मौत को, उसने कहा, "आज"
अपनी भारी, इस्पाती काली
तोपों के साथ अवरोरा पोत ने
कहा "आज!"
कहा "आज!"
और यूँ दर्ज की बोल्शेविकों ने इतिहास में
इतिहास के सर्वाधिक गम्भीर मोड़-बिन्दु की तारीख़:
उन्नीस सौ सत्रह
सात नवम्बर!

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2020-2022
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

उत्तर प्रदेश समेत कई राज्यों के आगामी विधान सभा चुनाव

देश में अन्धराष्ट्रवाद और साम्प्रदायिकता के गहराते बादल

– लता

उत्तर प्रदेश विधान सभा चुनाव मार्च 2022 में होने जा रहे हैं। इसके आस-पास ही उत्तराखण्ड, पंजाब, मणिपुर और गोवा विधान सभा के भी चुनाव होने जा रहे हैं। देश की आबो-हवा में अन्धराष्ट्रवाद और धार्मिक साम्प्रदायिकता के गाढ़े रंग घुलने लगे हैं। आतंकवादी हमले, सीमा पर गोलीबारी और देश में जगह-जगह दंगे इन चुनावों की सूचना दे रहे हैं। वैसे तो फ़ासीवादी मोदी सरकार और उसके सबसे मुस्तैद सिपहसालार अमित शाह, अन्धराष्ट्रवाद और धार्मिक साम्प्रदायिकता के रंग कभी फीके नहीं पड़ने देते लेकिन चुनावों के दौरान तो इन पर गाढ़ा वार्निश चढ़ाया जाता है।

इस बार दंगा बहुत बड़ा था
ख़ूब हुई थी
ख़ून की बारिश
अगले साल अच्छी होगी
फ़सल मतदान की।

– गोरख पाण्डे

जैसे ही सीमा पर गोलाबारी, आतंकवादी हमले, लव ज़िहाद, हिन्दू-मुसलमान आदि शब्द दिन में कई बार सुनाई देने लगें तो लोगों को समझ आने लगता है कि ज़रूर कोई चुनाव नज़दीक है। अक्सर लोगों को बोलते सुना होगा कि – 'अरे चुनाव आ रहे हैं, देखना ज़रूर कोई पुलवामा, कोई सर्जिकल स्ट्राइक या दंगा होगा'। यह सच है और बेहद त्रासद भी क्योंकि लोगों का ध्यान असल मुद्दों और कठिनाइयों से भटकाने के लिए अन्धराष्ट्रवाद और साम्प्रदायिक उन्माद सबसे कारगर नुस्ख़ों में एक है। जब महँगाई हमारी कमर तोड़ रही होती है, बेरोज़गारी, छँटनी, तालाबन्दी से हमारी आह-कराह निकल रही होती है तो हमें 'हिन्दू धर्म का अपमान', 'सीमा पर जवान', '56 इंच के सीने वाला बलवान' आदि का शोर सुनाई देने लगता है। हमारे बीच से भी कई लोग इन बातों पर विश्वास करने लगते हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि चाहे सीमा पर मरने वाले जवान हों या दंगों में मरने वाले लोग सभी आम मेहनतकश मज़दूर आबादी से आते हैं। नेता, मंत्री और करोड़पतियों के बच्चे कभी सेना में भर्ती नहीं होते और न ही दंगों में इनके मारे जाने की बात सुनने में आती है। बेरोज़गारी, ग़रीबी, भुखमरी और कुपोषण से हम मरते हैं और दंगों में भी हमारे लोगों की ही मौतें होती हैं।

हमें अन्धराष्ट्रवाद और साम्प्रदायिकता के पीछे की असली राजनीति को समझना बेहद ज़रूरी है क्योंकि एक बार फिर देश का राजनीतिक माहौल बेहद गम्भीर रूप से बिगड़ता जा रहा है। धर्म-संस्कृति के ठेकेदार और राष्ट्रवाद के चैम्पियन बने बजरंगदल, विश्व हिन्दू परिषद (विहिप), आरएसएस जैसे फ़ासीवादी संगठन बिना सिर-पैर की बातों पर धार्मिक उन्माद भड़का रहे हैं, लोगों के दिलो-दिमाग़ में ज़हर घोल रहे हैं। वैसे तो आरएसएस, बजरंगदल, विहिप या शिव सेना के लम्पट लंगूर सालभर किसी न किसी विज्ञापन, फ़िल्म या वैलेण्टाइन डे आदि पर शोर मचाते ही रहते हैं, तोड़-फोड़ करते ही रहते हैं। साथ ही अकेले कमज़ोर लोगों को मारना, अपमानित करना, मॉब लिन्चिंग करना इनके व्यवसाय हैं। लेकिन चुनावों के दौरान ये और भी घातक हो जाते हैं। बड़े-बड़े पूँजीपतियों से मिले चुनावी चन्दों में से एक हिस्सा इन उपद्रवियों को जाता है ताकि ये साम्प्रदायिक घटनाओं को अंजाम दे सकें। अभी हाल ही में 28 अक्टूबर को त्रिपुरा में सड़कों पर मुस्लिम समुदाय के ख़िलाफ़ विश्व हिन्दू परिषद के गुण्डों ने भड़काऊ नारे लगाकर रैलियाँ निकाली और फिर दंगे भड़काये। वजह बतायी गयी कि बांग्लादेश में विजयदशमी के दिन हिन्दुओं की दुकानें जलायी गयीं, उन्हें मारा गया इसलिए यह बदले के तौर पर किया जा रहा है। निश्चित ही बंगलादेश की इस घटना की निन्दा की जानी चाहिए और दोषियों को सज़ा देने की माँग वहाँ की सरकार से की जानी चाहिए। वहाँ के तरक़्क़ीपसन्द मुसलमानों और हिन्दुओं ने इन हमलों का इतने बड़े पैमाने पर विरोध किया कि बंगलादेश की प्रधानमंत्री तक को इस पर माफ़ी माँगनी पड़ी और स्पष्टीकरण देना पड़ा। हमें यह समझना चाहिए कि कहीं भी ऐसी घटनाओं को अंजाम साम्प्रदायिक ताक़तें ही देती हैं जिनमें आम लोग पिसते हैं। इसका मतलब यह क़तई नहीं होता कि किसी धर्म विशेष के सभी लोग ऐसी घटनाओं के लिए ज़िम्मेदार होते हैं। हमारे देश में आरएसएस, बजरंगदल, विहिप, शिव सेना जैसे फ़ासीवादी संगठन के भगवा ब्रिगेड जब दंगे भड़काते हैं या सड़कों पर मासूमों की मॉब लिन्चिंग करते हैं तो क्या इनकी हरकतों के लिए सभी हिन्दू दोषी हो जाते हैं? वैसे ही बंगलादेश और पाकिस्तान में हिन्दुओं या अन्य अल्पसंख्यकों के साथ होने वाली हिंसा के लिए सभी मुसलमान ज़िम्मेदार नहीं होते हैं। एक और बात जो ध्यान देने वाली है वह यह कि विजयदशमी यानी 15 अक्टूबर की घटना की 'प्रतिक्रिया' देने में हिन्दुत्ववादी फ़ासीवादियों को 12-15 दिन लग गये। इसका मतलब है कि यह जनता की स्वत:स्फूर्त प्रतिक्रिया नहीं थी बल्कि सोची-समझी योजना के तहत तैयारी के साथ लोगों में साम्प्रदायिक आग भड़कायी गयी और इस घटना को अंजाम दिया गया। दंगे हमेशा ही मैन्युफ़ैक्चर किये जाते हैं; चुनावों में अपनी गोटी लाल करने के लिए पूँजीवादी चुनावबाज़ व फ़ासीवादी पार्टियाँ अपनी राजनीति की फ़ैक्टरियों में दंगे मैन्युफ़ैक्चर करती हैं। अभी त्रिपुरा में और आने वाले समय में देश के अलग-अलग हिस्सों से ऐसी ख़बरें आती रहेंगी और आम लोग मरते रहेंगे।

बेहद संक्षेप में लेकिन इस ओर भी आपका ध्यान दिलाना ज़रूरी है कि त्रिपुरा वही राज्य है जिसमें 25 साल माकपा के नेतृत्व वाली वाम मोर्चे की सरकार थी। आज यहाँ भाजपा की सरकार है। जैसा पश्चिम बंगाल में लोकसभा चुनाव 2019 में हुआ वही त्रिपुरा में भी देखने को मिला। संशोधनवादी पार्टियों का सामाजिक आधार सीधे भाजपा में शामिल हो गया। इसके पीछे इन लाल कलँगी वाली संसदवादी पार्टियों का असली चेहरा नज़र आता है जिसने मज़दूर वर्ग को अर्थवाद और अवसरवाद के दलदल में घसीटा, नवउदारवाद की नीतियों को लागू किया और मज़दूर-मेहनतकश आबादी की राजनीतिक चेतना उन्नत करने का कोई प्रयास नहीं किया। परिणाम यह है कि आम मेहनतकश आबादी का भी एक हिस्सा फ़ासीवादी राजनीति के प्रभाव में है और आगजनी, दंगों और हत्या में भागीदारी कर रहा है।

बहरहाल, उत्तर प्रदेश के चुनावों पर वापस लौटते हैं। यह चुनाव और इसके साथ अन्य राज्यों के चुनाव भी किसी भी रूप में भिन्न नहीं होने जा रहे हैं। देश के अभी के माहौल को देखकर समझा जा सकता है कि चुनावों का यह दौर शायद पहले से कहीं ज़्यादा हिंसक, साम्प्रदायिक और अन्धराष्ट्रवाद की लहर से भरा होगा क्योंकि इन चुनावों को 2024 के चुनावों का पूर्वाभ्यास माना जा रहा है।

लोकसभा की 80 सीटों के हिसाब से उत्तर प्रदेश देश का सबसे बड़ा राज्य है। इसलिए यहाँ लोकसभा और राज्यसभा दोनों के ही चुनाव किसी भी चुनावबाज़ पार्टी के लिए विशेष महत्व रखते हैं। सपा, बसपा, कांग्रेस, आम आदमी पार्टी आदि की चुनावी तैयारियों को देखकर यह बात बिल्कुल सही लगती है। मज़दूर वर्ग के लिए इन चुनाव अभियानों में सबसे ग़ौर करने वाली बात यह है कि इनमें से किसी भी पार्टी के पास कम से कम ज़ुबानी जमा ख़र्च के लिए भी रोज़गार, महँगाई, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि मुद्दा प्रमुख मुद्दा नहीं है। इन्हें दुहराते सब हैं लेकिन भाजपा की तरह ही इन पार्टियों ने भी चुनाव प्रचार में धर्म की शरण ली है। भाजपा और आरएसएस के हिन्दुत्व एजेण्डे पर हम बाद में आयेंगे। पहले इन पार्टियों की राजनीति पर एक नज़र डाल लेते हैं। केजरीवाल और आम आदमी पार्टी (आप) पंजाब में बार-बार धनी किसानों को आश्वासन दे रहे हैं कि 'आप' की जीत उन्हें उचित मुआवज़ा दिलायेगी वहीं उत्तर प्रदेश में क़दम रखते ही उन्हें हिन्दू धर्म, रामलला और राम-मन्दिर मुद्दा नज़र आता है। अयोध्या में राम मन्दिर के निर्माण का लम्बे समय से समर्थन कर रहे केजरीवाल ने घोषणा की है कि दिल्ली वालों को राम मन्दिर की यात्रा मुफ़्त करायेंगे और अगर जीत गये तो यूपी वालों के लिए भी यात्रा मुफ़्त होगी। बसपा के सतीष चन्द्र मिश्रा ने वायदा किया है कि अगर उनकी पार्टी जीत कर आती है तो भव्य राम मन्दिर का निर्माण वे करेंगे। सपा के अखिलेश यादव भी घुमा-फिराकर राम मन्दिर, अयोध्या और सबसे बड़ा हिन्दू होने का दावा करते रहते हैं। राम जन्मभूमि विवाद की सूत्रधार कांग्रेस तो हमेशा से नर्म हिन्दुत्व का कार्ड खेलती आयी है। हिन्दू वोट बैंक को आकृष्ट करने के फ़िराक़ में चुनाव अभियानों के दौरान मन्दिरों के दर्शन और पूजा-पाठ करती है। इनकी ये करतूतें कितने वोट हासिल करवाती हैं उसका पता नहीं लेकिन एक बात निश्चित है कि ये चुनावों में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण को मज़बूत बनाता है। लेकिन इन्हें यह बात समझ नहीं आती कि यदि धर्म को मुद्दा बनाया जायेगा तो इनका यह नर्म हिन्दुत्व फ़ासीवादी हिन्दुत्व के आगे टिकेगा नहीं लेकिन साम्प्रदायिकता की आग भड़काने में घी का काम ज़रूर करेगा। वैसे देखा जाये तो इनके पास भी जनता को दिखाने के लिए है ही क्या? नवउदारवाद की नीतियों को सबने धड़ल्ले से लागू किया है, मज़दूरों का ख़ून निचोड़ने की नीतियाँ इन सबों ने लागू की हैं। बड़े-बड़े चुनावी वायदे ज़मीन पर फुस्स रहे हैं, ओबीसी, दलित व अन्य जातिगत पहचान की राजनीति भी अब नहीं चल सकती क्योंकि इन सामाजिक रूप से दमित व शोषित समुदायों का भी कोई उद्धार तो इनके हाथों कभी हुआ नहीं। ख़ैर, जो भी हो इनका धर्म को मुद्दा बनाना भाजपा की फ़ासीवादी हिन्दुत्ववादी राजनीति को ही लाभ पहुँचाएगा क्योंकि जब धर्म की बात आयेगी तो "हिन्दू हृदयसम्राट" तो भाजपा के पास ही हैं और फ़ासीवादी लम्पटों गुण्डों की वानर सेना भी इनकी ही है!

साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति को हवा देना भाजपा के लिए इस समय बेहद फ़ायदेमन्द है क्योंकि किसान आन्दोलन और तीन कृषि क़ानून की वजह से धनी किसानों में पैदा हुए असन्तोष पर भी साम्प्रदायिक लहर और धार्मिक उन्माद के ज़रिए हावी हुआ जा सकता है। लेकिन उससे भी बड़ा कारण यह है कि कोरोना महामारी की शुरुआत के बाद से अब तक योगी सरकार की भयंकर संवेदनहीनता और नाकामी और उसके बाद महँगाई, बेरोज़गारी और ग़रीबी पर क़ाबू पाने के प्रयासों की बजाय अपनी सरकार के झूठे प्रचार पर करोड़ों रुपये पानी की तरह बहाने के कारण व्यापक जनता में भयंकर असन्तोष है, जो कि उत्तर प्रदेश में ही नहीं बल्कि हालिया विधानसभा उपचुनावों में कई राज्यों में प्रकट हुआ है। यही कारण है कि बहुत मुमकिन है कि भाजपा आगामी विधानसभा चुनावों में हर जगह अपने तुरुप का पत्ता खेल सकती है, यानी साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति के ज़रिए धार्मिक ध्रुवीकरण और छोटे-बड़े दंगे कर हिन्दू वोटों का अपने पक्ष में ध्रुवीकरण।

धार्मिक ध्रुवीकरण और साम्प्रदायिक उन्माद के अलावा जिस मुद्दे को भाजपा और संघ परिवार हमेशा सुलगाये रहते हैं वह है – अन्धराष्ट्रवाद। अन्धराष्ट्रवाद के लिए सदा तैयार ज़हरीला कॉकटेल है कश्मीर का मुद्दा और हिन्दुस्तान-पाकिस्तान तनाव। कोरोना काल में ऑक्सीजन, अस्पताल और दवाइयों की कमी से बेमौत मरने वालों की संख्या चालीस लाख से ऊपर की है जिनमें निश्चित ही बड़ी आबादी हिन्दुओं की ही रही होगी। इस दौरान फ़ासीवादी संगठनों को हिन्दू ख़तरे में नज़र नहीं आये। तब तो बजरंगदल और आरएसएस को साँप सूँघ गया था। लेकिन हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के मैच जैसी मामूली बात पर इनका विषैला अन्धराष्ट्रवाद उफान मारने लगता है। उस समय ये लोगों को मारते-पीटते हैं और उन्हें पाकिस्तान भेजने की बातें करते हैं। अभी आलम यह है कि हर दूसरी ख़बर कुछ इस प्रकार की ही है। क्या देश में नौजवानों की बेरोज़गारी मुद्दा नहीं है, महँगाई, बीमारी, शिक्षा, कम मज़दूरी, काम के बढ़ते घण्टे ये मुद्दे नहीं हैं? देश की अस्सी प्रतिशत आबादी इन मुद्दों के बोझ तले दबती जा रही है। बच्चे भूख, कुपोषण और मामूली बीमारी से मर रहे हैं। लेकिन सभी जगह से शोर उठ रहा है कि हिन्दू ख़तरे में हैं और इनका विरोध करने वाला हर व्यक्ति देशद्रोही है।

अभी जैसे-जैसे चुनाव नज़दीक आते जा रहे हैं कश्मीर में तनाव बढ़ रहा है और सीमा से गोलाबारी की ख़बरें आनी शुरू हो गयी हैं। 30 अक्टूबर को बारूदी सुरंग विस्फोट में दो सेनाकर्मी मारे गये। इसके पहले आतंकवादी हमले हुए। अक्टूबर के महीने में कश्मीर में हुए आतंकवादी हमलों में कई लोगों की जानें गयीं जिसमें हिन्दू, सिख और मुसलमान समुदाय के लोग शामिल थे। 2 अक्टूबर को दो कश्मीरी मुसलमानों को आतंकवादियों ने मारा फिर 7 अक्टूबर को एक स्कूल में घुसकर स्कूल की प्रधानाचार्या सुपिन्दर कौर और एक हिन्दू शिक्षक की गोली मार कर हत्या कर दी। दवाई दुकान के मालिक माखनलाल बिन्दु को आतंकवादियों ने अपना निशाना बनाया। फिर रेहड़ी लगाने वाले एक प्रवासी मज़दूर और एक मुसलमान टैक्सी चालक को भी आतंकवादियों ने मार डाला। इन कायराना आतंकवादी हमलों में मरने वाले सभी समुदायों से होते हैं लेकिन गोदी मीडिया इन्हें हिन्दुओं पर होने वाले कश्मीरी मुसलमान के हमले के रूप में प्रस्तुत करती है और पूरी कश्मीरी मुसलमान आबादी को आतंकवादी क़रार दे देती है।

अन्धराष्ट्रवाद की लहर पैदा करने के लिए, जैसा कि हमने पहले भी कहा है, कश्मीर का मुद्दा इनके लिए रामबाण नुस्ख़ा होता है। कश्मीर का मुद्दा इनके लिए एक तीर से दो निशाने साधने का काम करता है: अन्धराष्ट्रवाद का मसाला और धार्मिक ध्रुवीकरण व साम्प्रदायिकता के लिए कश्मीरी पण्डितों का मुद्दा। उत्तर प्रदेश जैसे महत्वपूर्ण चुनाव में इस मुद्दे को भुनाया न जाये ऐसा भला कैसे हो सकता है! साथ ही यह मुद्दा जितना सियासी महत्व भारत के हुक्मरानों के लिए रखता है उतना ही यह पाकिस्तान के हुक्मरानों के लिए भी काम की तरकीब है। दोनों ही देशों के पूँजीवादी शासक वर्ग अपनी-

(पेज 14 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006